अक्तूबर-दिसंबर **अंक : 105** **2020**
October-December
ISSN : 0976-0024

महिला Mahila
विधि भारती Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-27/2020

विधि भारती परिषद्
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272
फ़ोन : 011-27491549, 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. सूची में शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)
विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail. com
Website : www. vidhibharatiparishad. in
अंक : 105 (अक्तूबर-दिसंबर, 2020)
प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

बोर्ड ऑफ रेफरीज एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. न्यायमूर्ति श्री एस.एन. कपूर : पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय, पूर्व सदस्य, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग, नई दिल्ली।
6. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
7. प्रो. (डॉ.) गुरजीत सिंह : संस्थापक वाइस चांसलर, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी एवं न्यायिक अकादमी, असम
8. श्री हरनाम दास टक्कर : पूर्व निदेशक, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू नूर (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. श्री जी.आर. गुप्ता (सदस्य)
10. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम् (सदस्य)
15. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
16. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क अलग

अंक 105 में

1. किसान आंदोलन और समाधान (संपादकीय) / **सन्तोष खन्ना** -- 307
2. संपरिवर्तन : एक विशेष विश्लेषण / **प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह** -- 311
3. नारी सशक्तिकरण एवं भारत का संविधान / **अनुराधा सिंह** -- 318
4. भारत में वैवाहिक बलात्कार : एक गंभीर सामामजिक समस्या / **डॉ. राज कुमार एवं डॉ. मनीष दलाल** -- 325
5. भारत रत्न श्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं संसद / **के.आर. पांडेय** -- 332
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति : महत्त्व व चुनौतियाँ / **डॉ. फरहत खान** -- 337
7. जम्मू एवं कश्मीर भूमि (अधिभोक्ताओं में स्वामित्व का निहितकरण) अधिनियम 2001 (रोशनी एक्ट) : राज्य के भूमि घोटाले का समसामयिक विश्लेषण / **डॉ. एस.एस. दास एवं कीर्तिका सिंह** -- 343
8. इंटरनेट पर महिलाओं की सुरक्षा का अधिकार / **संतोष बंसल** -- 350
9. लखनऊ विश्वविद्यालय के विधि संकाय की पहचान इनोवेशन / **प्रो. अशोक कुमार अवस्थी** -- 357
10. भारत का संविधान (कविता) -- 359
11. महिला सुरक्षा एवं सामाजिक जागरूकता / **साक्षी वर्मा** -- 360
12. भारत में अनेकता में एकता-अतुल्य भारत के संदर्भ में / **डॉ. श्रीमती राजेश जैन** -- 362
13. 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' -- की वर्तमान वास्तविकता / **पुष्पा सिन्हा** -- 365
14. ग्रेजुएटी से जुर्माना किराया (penal rent) वसूली का प्रश्न -- 367
15. भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में नारी स्वातंत्रय की अवधारणा : वैदिक से रामायण काल / **डॉ. साधना गुप्ता** -- 368
16. आज के समय को प्रदीप्त करता उपन्यास 'रोशनी' / **डॉ. अमिता तिवारी** -- 373
17. हरियाणा में हिंदी में न्याय के विरुद्ध याचिका / **संतोष खन्ना** -- 376
18. Legal Terrorism : A Perusal of the Problem with Special Reference to Misuse of Protective Laws Made for Women in India / **Phalguni Sharma** -- 378
19. Governmental Organizations and Institutes vis-à-vis Labour Welfare in India / **Dr. Rajinder Verma and Bhumika Sharma** -- 386
20. Legal Aid in the United States / **Priyanka Singh** -- 390

लेखक मंडल

प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह : प्रोफेसर और पूर्व संकायाध्यक्ष और विभागाध्यक्ष, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

अनुराधा सिंह : सहायक प्राध्यापक विधि, शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय शिवपुरी (मध्य प्रदेश)

Dr. Raj Kumar : Associate Professor, Head and Dean, Faculty of Law, Baba Mastnath University, Asthal Bohar, Rohtak-124021 (Haryana)

Mobile : 09466602200, **e-mail :** austereraj@gmail.com

डॉ. मनीष दलाल : असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ, बाबा मस्त नाथ यूनिवर्सिटी, अस्थल बोहर, रोहतक-124021

के.आर. पांडेय : 97, कूर्मांचल निकेतन, 115, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

डॉ. फरहत खान : प्राध्यापक (प्राचार्य), रेनेसाँ विधि महाविद्यालय, इंदौर

Dr. S.S. Das : Faculty of Law, Centre For Juridical Studies, Dibrugarh University, Assam-786004

Keertika Singh : Law Scholar, School of Law, UPES, Dehradun-248007

Mrs. Santosh Bansal : A-1/7 Mianwali Nagar, Paschim Vihar, Delhi-110087

प्रो. अशोक कुमार अवस्थी : पूर्व डीन, एच.ओ.डी., विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

साक्षी वर्मा : पूर्व छात्रा, भारतीय अनुवाद परिषद्, 24, स्कूल लेन, बंगाली मार्केट, नई दिल्ली-1, **मोबाइल** : 9911334606

डॉ. श्रीमती राजेश जैन : (डी.लिट.) प्रोफेसर एवं विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी, उच्च शिक्षा सागर संभाग, सागर (मध्य प्रदेश)

पुष्पा सिन्हा : 167 प्रगति अपार्टमेंट, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

मोबाइल : 9312716411, **ई-मेल** : sinha.vartika11@gmail.com

डॉ. साधना गुप्ता : द्वारा : के.एल.गुप्ता 'एडवोकेट' मंगलपुरा टेक, झालावाड़ (राजस्थान)

मोबाइल : 9530350325, **E-mail :** sadhanagupta0306.sg@gmail.com

डॉ. अमिता तिवारी : एसोसिएट प्रोफेसर, (जीसस एंड मेरी कॉलेज) दिल्ली विश्वविद्यालय

Phalguni Sharma : Indore, Madya Pradesh

Dr. Rajinder Verma : Associate Professor, Himachal Pradesh University, Shimla

Bhumika Sharma : Ph.D. Research Scholar, H.P. University, Shimla

Priyanka Singh : Assistant Professor, Vaiashnav Institute of Law, Indore

E-mail : priyankasingh0@gmail.com

संपादकीय

किसान आंदोलन और समाधान

दिसंबर, 2020 का तीसरा सप्ताह आने के साथ उत्तर भारत में शीत लहर का प्रकोप बढ़ता जा रहा है और मौसम विभाग के अनुसार शीत का प्रकोप आगे और बढ़ेगा। मैंने भी अपने शरीर को ख़ूब गर्म कपड़ों से ढक लिया है और रजाई के ऊपर एक और रजाई भी रख ली है परंतु ऐसा महसूस नहीं होता कि कहीं गर्माइश मिल रही है इसलिए मेरे कक्ष में बलाउर भी लग गया है। हो सकता है आयु के कारण मैं इस शीत को सहज ही सहन नहीं कर पा रही हूँ परंतु समाचारों की सुर्खियाँ भी तो यही कह रही हैं कि उत्तर भारत शीत लहर से काँप रहा है, तब मुझे अपने उन किसान भाईयों की कठिनाइयों के बारे में लगता है कि वह यह सब कैसे सहन कर रहे हैं और आंदोलन के लिए डटे हुए हैं, खुले आसमान के नीचे शीत और कोरोना की बिना परवाह किए। वह कृषि सुधारों के विरुद्ध आंदोलन कर रहे हैं और दिल्ली की सीमाओं पर पिछले 25 से भी अधिक दिनों से डटे हैं और इस समय की परिस्थिति और उनके निश्चय को देख कर कहा जा सकता है कि आंदोलन को चाहे पूरा महीना भी हो जाएगा परंतु वह अपनी ज़िद्द छोड़ने वाले नहीं हैं।

इस वर्ष सितंबर, 2020 में हुए संसद के मॉनसून सत्र में सरकार ने संसद में कृषि सुधारों के लिए तीन विधेयक प्रस्तुत किए जिसे संसद ने पारित कर दिया और उसके बाद उन विधेयकों को राष्ट्रपति की सहमति मिल गई और वह लागू कर दिए गए। तब से किसान विशेष रूप से पंजाब के किसान उन क़ानूनों का विरोध कर रहे हैं पहले उनका आंदोलन पंजाब में चल रहा था जहाँ उन्होंने रेलें रोक दी थीं और अब 27 अक्तूबर, 2020 से उन्होंने दिल्ली के सिंधु बॉर्डर पर डेरा डाल दिया है। केंद्र सरकार ने शीघ्र ही उनके आंदोलन का संज्ञान लेते हुए उन्हें बातचीत के लिए आमंत्रित किया और विज्ञान भवन में उनके साथ वार्ता के दौर चले और बाद में उनकी गृह मंत्री श्री अमित शाह से भी बात हुई परंतु अभी तक सब बेनतीजा ही रहा। अभी तक सरकार ने उनके द्वारा उठाए हर मुद्दे पर उन्हें आश्वस्त किया है कि एम. एस.पी. अर्थात् कृषि उपज के न्यूनतम मूल्य की व्यवस्था हटेगी नहीं, बनी रहेगी, मंडियाँ हटेगी नहीं, बल्कि उनका आधुनिकीकरण कर उनका आगे और विकास किया जाएगा। सरकार ने इसके लिए 500 करोड़ की व्यवस्था भी की है। किसान अपनी फसल पहले की तरह मंडियों में बेच सकेंगे और नए क़ानून उन्हें यह विकल्प देते हैं कि वह चाहें तो अपनी फसल मंडियों

के बाहर भी बेच सकेंगे। अगर उन्हें मंडियों के बाहर फसल का अधिक दाम मिले तो वह चाहें तो बाहर भी बेच सकेंगे। इसी प्रकार, उनके हर मुद्दे को सरकार मानती जा रही है। वह लिखित में आश्वासन चाहते थे, सरकार ने उन्हें लिख कर सभी बातों पर अपने प्रस्ताव भेजे परंतु वह टस-से-मस नहीं हुए। सरकार ने अंततः यह भी कहा कि वह किसानों से कृषि क़ानूनों पर खंड-वार विचार करने को भी तैयार हैं, हाँ, कृषि क़ानूनों को वापस नहीं ले सकते क्योंकि इन्हें किसानों के लाभ के लिए बनाया गया है और देश में किसानों को इन क़ानूनों का लाभ भी मिलने लगा है। किसानों द्वारा उठाई गई सभी आपत्तियों पर प्रधान मंत्री श्री मोदी ने उनका सिलसिलेवार जवाब देते हुए उन्हें आश्वासन दिया है कि उनकी हर शिकायत को सुना जाएगा, वह बातचीत के लिए आगे आएँ। कृषि मंत्री श्री नरेंद्र सिंह तोमर ने भी उन्हें एक खुला पत्र लिख कर उनकी सब तरह की बातों पर आश्वासन दिया और उन्हें बातचीत करने का आमंत्रण दिया और इस संबंध में प्रधान मंत्री ने भी उनसे अपील की है कि आंदोलन का समाधान बातचीत से ही हो सकता है।

इस बीच किसान आंदोलन देश की सर्वोच्च अदालत उच्चतम न्यायालय में भी पहुँचा। भारत के मुख्य न्यायाधीश एस.ए. बोवड़े की पीठ ने किसान आंदोलन के बारे में सुनवाई करते हुए कहा कि किसानों को शांतिपूर्ण आंदोलन करने का संवैधानिक अधिकार है। अगर वह राष्ट्र की संपत्ति को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं और जान-माल का नुकसान नहीं करते हैं तो उन्हें यह अधिकार है परंतु इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि वह देश के अन्य नागरिकों के अधिकारों का हनन न करें; आंदोलन करने का भी उद्देश्य होना चाहिए, केवल आंदोलन के लिए आंदोलन की इजाज़त नहीं दी जा सकती। उन्हें बातचीत के लिए आगे आना चाहिए। किसानों और सरकार द्वारा अपनाए गए पक्ष के संदर्भ में उन्होंने सुझाव दिया कि उच्चतम न्यायालय द्वारा एक समिति बनाई जाएगी जिसके समक्ष दोनों पक्ष अपनी बात रख सकेंगे। किसान पक्षों को आगे आ कर इस समिति के लिए अपनी सहमति देने की बात उन्होंने कही। मुख्य न्यायाधीश की ओर से एक यह भी सुझाव आया कि फ़ैसला होने तक क्या सरकार इन क़ानूनों को होल्ड कर सकती है जिस पर सरकार ने अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, अपनी असमर्थता जता दी है कि इन सुधारों से कृषि क्षेत्र में सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं, उन्हें रोका नहीं जा सकता है।

प्रश्न उठता है कि जब से किसान आंदोलन प्रारंभ हुआ है समूचे देश ने देखा है कि सरकार ने आंदोलनकारियों की हर बात मानी है परंतु उनकी ज़िद्द है कि इन क़ानूनों को वापस लिया जाए। उनकी यह हठधर्मिता उचित नहीं लगती क्योंकि विगत हम अगर पिछले दो-तीन दशकों का इतिहास देखते हैं तो कृषि क्षेत्र में ऐसे सुधार लाने की माँग बराबर उठती रही है, यहाँ तक कि कांग्रेस जिसने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लगभग 50 वर्ष देश में शासन चलाया है वह भी समय-समय पर इन सुधारों को करने की बात करती रही है, यह दूसरी बात है कि उसने न तो स्वामीनाथन प्रतिवेदन में की गई सिफ़ारिशों को लागू किया और न

ही इस बारे में किए गए अपने वायदों को पूरा किया। जब केंद्र में कांग्रेस सरकार ने शरद पवार कृषि मंत्री थे तो उन्होंने सभी राज्य सरकारों को पत्र लिख कर इन सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया था। दूर ही क्यों जाएँ, कांग्रेस ने वर्ष 2019 में हुए लोक सभा चुनावों में अपने घोषणा-पत्र में कहा था कि अगर वह सत्ता में आए तो कृषि सुधारों को लागू करेंगे। जब संसद में इन क़ानूनों को पारित किया गया तो अकाली दल की मंत्री इन सुधारों के बढ़-चढ़ कर लाभों को गिनाती नज़र आ रही थी, फिर क्या कारण है कि कांग्रेस और अकाली दल अब पलटी मार इन सुधारों का विरोध कर रहे हैं। केजरीवाल सरकार ने इन क़ानूनों को लागू करने के लिए सबसे पहले नाटिफिकेशन जारी कर दिए थे और इन क़ानूनों के लाभ भी गिनाए थे, अब वही केजरीवाल दिल्ली विधान सभा का विशेष सत्र बुला कर उन क़ानूनों को विधान सभा में फाड़ते नज़र आ रहे हैं। जिस कांग्रेस ने 2019 में जिन सुधारों को अपने घोषणा-पत्र में सम्मिलित किया था, वही राहुल गांधी का हर वक्तव्य किसानों को भड़काता नज़र आ रहा है, पहले माँ-बेटे ने अर्थात् सोनिया गांधी ने नागरिकता क़ानून के संबंध में रामलीला मैदान में अपने भाषण में लोगों को भड़काया था कि अब आर-पार की लड़ाई होगी, लोगों को सड़कों पर आना चाहिए जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता पार्टी और मुस्लिमों में एक दरार डाल दी गई और समझाने के बावजूद देश-भर में बड़े पैमाने पर आंदोलन हुआ और अंततः दिल्ली में ऐसे दंगे करवाए गए जिसमें 50 से अधिक लोग मारे गए, 400 से अधिक लोग घायल हुए और करोड़ों की संपत्ति की हानि देश को सहनी पड़ी।

देश में आर्थिक उदारवाद का रास्ता तो कांग्रेस पार्टी का ही दिखाया हुआ है। जब राजीव गांधी प्रचंड बहुमत के साथ प्रधान मंत्री बने थे तो तभी आर्थिक सुधारों की सुगुबुगाहट होने लगी थी वह तो बोफोर्स तोप के घोटाले की आड़ में राजीव गांधी को इन सुधारों को अधिक नहीं लाने दिया गया। किंतु जब नरसिंह राव प्रधान मंत्री बने तो मनमोहन सिंह को वित्त मंत्री ही इसीलिए बनाया गया था कि आर्थिक उदारीकरण लागू किया जा सके। तब से आर्थिक सुधारों की यात्रा का दौर देश में चला है और हर आने वाली सरकार उन्हें लागू करने में प्रयत्नशील है। जब से मोदी जी प्रधान मंत्री बने हैं, वह भी आर्थिक सुधारों को ही लागू कर रहे हैं। हालाँकि आर्थिक सुधारों के घटाटोप में वह जन-कल्याण सुधारों को भी उतनी ही शिद्दत से लागू कर रहे हैं क्योंकि भारत में जन-कल्याण छोड़कर और कोई विकल्प ही नहीं है, तभी तो कई लोग कहते हुए सुने जाते हैं कि भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस की विचारधारा में कोई विशेष अंतर नहीं है। अगर कांग्रेस ने कृषि के बारे में स्वामीनाथन रिपोर्ट में की गई सिफ़ारिशों को लागू नहीं किया जिन्हें वह लागू करना चाहती थी अगर मोदी सरकार ने उन्हें लागू कर दिया है तो वह क़दम ग़लत कैसे हो गए? क्या मोदी का नाम आते ही कांग्रेस को कुछ भी अच्छा नहीं लगता, चाहे वह देश-हित में ही क्यों न हो।

ख़ैर, बात किसानों की करते हैं। जब मोदी सरकार उनके सामने झुक कर दोहरी-तिहरी हो रही है तो वह बातचीत कर समाधान की ओर क्यों नहीं बढ़ रहे हैं? सरकार कह रही

है कि इस किसान आंदोलन को खालिस्तानी, नक्सली आदि तत्त्वों ने हाइजेक कर लिया है और किसान इस आरोप से सरकार से नाराज़ हैं पर क्या इस आरोप के लिए सरकार को दोष दिया जा सकता है। आजकल कैमरे से कुछ भी छिपाया नहीं जा सकता। आंदोलन में खालिस्तान के, पाकिस्तान के बढ़-चढ़ कर नारे लगाए गए। नक्सली आरोपियों की तस्वीरें लगा कर उनको छोड़ने के लिए नारे लगाए गए, शरजील और खालिद को छोड़ने के नारे लगाए गए, यह क्या संयोग था या कोई प्रयोग? जिसे टी.वी. कैमरों पर समूचे देश ने देखा, उससे अंदाज़ लगाया जाना कठिन नहीं है कि वस्तुतः किसान आंदोलन को हाइजैक करने का उत्कट प्रयास तो किया गया है; इतने बड़े आंदोलन में ऐसे तत्त्वों का घुस आना अस्वाभाविक भी नहीं है, इसके लिए किसानों को सचेत करना सही था। पंजाब के मुख्य मंत्री कुछ दिन पहले कह चुके हैं कि इस आंदोलन से राष्ट्रीय सुरक्षा को ख़तरा पैदा हो सकता है। फिर टी.वी. कैमरों से यह भी छिपा नहीं रह सकता कि कैसे-कैसे गुंडा तत्त्व इस आंदोलन में भी घुस गया है। कैमरों की नज़र से तो सब को लग रहा है कि यह आंदोलन नहीं, अय्याशों का अड्डा बन गया है जहाँ शाम के छः बजते ही शराब की बोतलें खुल जाती हैं और ढींगा-मस्ती आरंभ हो जाती है। और तो और, कुछ, टी.वी. चैनलों की रिपोर्ट्स उनके साथ वहाँ हुई बदतमीज़ी का बयान करती देखी गईं जिनके विरुद्ध वहाँ कुछ लोग अश्लील टिप्पणियाँ करते हुए नज़र आए। यह तो सब देख ही रहे हैं कि आंदोलन स्थल पर पंच तारा होटलों की-सी सुख-सुविधाएँ मुहैया कराई जा रही हैं। आख़िर इस आंदोलन की फंडिंग कौन कर रहा है? सरकार को जाँच करनी चाहिए।

प्रश्न यही है कि वर्तमान परिस्थिति में समाधान के रास्ते में रुकावट बन रही दीवार को कैसे हटाया जाए? क्या अंततः उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रस्तावित समिति से समाधान संभव है? उसका प्रयास करना होगा और किसान पक्ष को उच्चतम न्यायालय को बताना होगा कि वह समिति के समक्ष प्रस्तुत होने के लिए तैयार हैं। इस संबंध में संबंधित पक्षों को शीघ्र कार्यवाही कर समाधान को सुलभ बनाना चाहिए। आगे विलंब समस्या को और जटिल बना सकता है।

❑

प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह

संपरिवर्तन : एक विधिक विश्लेषण

उच्चतम न्यायालय ने अभी हाल में ही दिनांक 16 दिसंबर, 2020 को अपने एक महत्त्वपूर्ण वाद में स्पष्ट कर दिया कि मात्र विवाह के लिए धर्म परिवर्तन करना ग़लत है। तीन जजों की बेंच ने जिसमें प्रमुख न्यायाधीश जस्टिस एस.ए. बोडे, जस्टिस ए.एस. बोपन्ना और जस्टिस रामासुब्रमनियम ने अपने आदेश में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के वकील अल्डेनीश रेन की याचिका खारिज़ कर दी जिसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई थी जिसमें निर्णीत किया गया है कि धर्म परिवर्तन मात्र विवाह के लिए विधि की निगाह में वैध नहीं है।[1] साथ ही अभी हाल में ही उत्तर प्रदेश राज्य ने 'उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020' पारित किया है।

प्रस्तुत आलेख में उपरोक्त के संबंध में धर्म परिवर्तन से संबंधित अनेकों मुद्दों पर विस्तार से चर्चा करने का, उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के हवाले से स्थिति को स्पष्ट करने का एवं साथ ही आवश्यक सलाह लेने का प्रयास किया गया है जिससें इस समस्या का स्थायी रूप से निराकरण किया जा सके।

भारत में वर्षों से ही विभिन्न धर्मो, समुदाय इत्यादि के लोग आपसी भाईचारे के साथ-साथ रह रहे हैं। यदि भारत की जनसंख्या के आँकड़े पर ग़ौर करे तो 2011 की जनसंख्या के अनुसार भारत में 79.80 प्रतिशत जनसंख्या हिंदू, 14.23 प्रतिशत मुस्लिम, 2.30 प्रतिशत क्रिश्चियन, 1.72 प्रतिशत सिख, 0.70 बुद्धिसट, और 0.37 प्रतिशत जैन हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक इसी आशय को समाविष्ट किया गया है। सविधान के 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'पंथ-निरपेक्ष' शब्द को समाविष्ट किया गया है। यद्यपि प्राचीनकाल से ही भारत धर्म-निरपेक्ष रहा है। यहाँ पर सभी धर्मावलंबियों के साथ समान व्यवहार किया जाता है। भारत में इसका तात्पर्य केवल यह है कि राज्य धर्म के मामले में पूर्णतः तटस्थ है। राज्य प्रत्येक धर्म को समान रूप से संरक्षण प्रदान करता है, किंतु किसी धर्म में हस्तक्षेप नहीं करता है। **एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ,**[2] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया कि 'पंथनिरपेक्षता संविधान का आधारभूत ढाँचा है। न्यायमूर्ति रामास्वामी ने अभिनिर्धारित किया कि ''पंथनिरपेक्षता ईश्वर विरोधी नहीं है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में पंथ-निरपेक्षता का सकारात्मक रूप है। सकारात्मक पंथ-निरपेक्षता वैयक्तिक विश्वास को आध्यात्मिक पक्ष से पृथक् करती है। राज्य न तो किसी धर्म का पक्ष लेता है न ही

धर्म का विरोध करता है। राज्य धर्म के मामले में तटस्थ है और सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है।''[3]

संपरिवर्तित व्यक्ति वह है जो अपना धर्म त्याग कर दूसरा धर्म स्वीकार कर लेता है। शास्त्रिक हिंदू विधि का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि हिंदू जन्म से होता है, उसे बनाया नहीं जा सकता। हिंदू धर्म के विकास के साथ-साथ लोगों की धर्म के प्रति बदलती आस्था ने अब उक्त सिद्धांत के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन किया हैं। अब कोई व्यक्ति जिसने अपने धर्म को त्याग कर हिंदू धर्म को स्वीकार कर लिया है तो भी वह हिंदू माना जाएगा। अर्थात् यदि कोई हिंदू धर्म परिवर्तन करके किसी अन्य धर्म को ग्रहण कर लेता है, तो वह व्यक्ति हिंदू विधि के लिए हिंदू नहीं रहेगा जबकि यदि किसी अन्य धर्म को मानने वाला अपना धर्म त्याग कर हिंदू धर्म स्वीकार कर लेता है तो वह व्यक्ति हिंदू विधि द्वारा शासित होगा।

लेकिन मात्र किसी धर्म में आस्था रखना धर्म परिवर्तन नहीं कहलाएगा। जैसे, एक ईसाई हिंदू धर्म और दर्शन का इतना प्रशंसक हो जाता है कि वह हिंदू धर्म में कही गई हर बात को मानने व अपनाने लगता है, प्रव्यंजना करने लगता है और हिंदू मंदिरों में जाकर पूजा-पाठ करने लगता है, तो भी वह हिंदू नहीं बन जाएगा। वह हिंदू तब ही होगा जबकि धर्म संपरिवर्तन द्वारा वह हिंदू हो जाए।[4]

अब्राहम बनाम अब्राहम[5] के वाद में प्रिवी काउंसिल के समक्ष प्रश्न यह उठा कि क्या कोई हिंदू ईसाई होने पर हिंदू विधि द्वारा शासित हो सकता है? इस संबंध में प्रिवी काउंसिल ने मत व्यक्त किया कि ईसाई होने के पश्चात् यह अनिवार्य नहीं है कि वह हिंदू विधि से ही शासित होता रहे। यथार्थ में सामान्यतया हिंदू विधि उस पर लागू नहीं होगी।

पेरूमल बनाम् पोन्नूस्वामी[6] के महत्त्वपूर्ण वाद में उच्चतम न्यायालय ने संपरिवर्तन के लिए निम्न संकल्पनाएँ प्रस्तुत की :

एक ग़ैर-हिंदू संपरिवर्तन द्वारा हिंदू बन जाएगा :

1. यदि वह हिंदू धर्म के जिस जाति व समुदाय में संपरिवर्तन चाहता है उस समुदाय में धर्म-परिवर्तन संबंधी जो अनुष्ठान या औपचारिकताएँ विहित है, उसका पालन किया हो।
2. यदि उसने ईमानदारी (bonafide) से संपरिवर्तन संबंधी अपना आशय स्पष्ट रूप से (intention) प्रकट किया हो और जिस समुदाय में वह परिवर्तन चाहता है उस समुदाय के सदस्य उसे स्वीकार कर लेते हैं।
3. यदि वह सिर्फ़ ईमानदारी से अपने हिंदू होने की घोषणा कर देता है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति ने स्वेच्छा से हिंदू धर्म को स्वीकार कर मात्र उसकी घोषणा कर दी हो तो ऐसा व्यक्ति हिंदू मान लिया जाएगा। चाहे उसने इस प्रयोजनार्थ किसी भी धार्मिक अनुष्ठान को संपन्न नहीं किया है।

मोहनदास बनाम देवासन बोर्ड[7] के मामले में केरल उच्च न्यायालय ने हिंदू धर्म ग्रहण करने के मामले को और स्पष्ट करते हुए कहा कि ऐसे मामले में व्यक्ति के आशय एवं उसके आचरण पर ध्यान देकर निष्कर्ष तक पहुँचना चाहिए। संबंधित वाद में जैसूदास नाम कैथोलिक

ईसाई हिंदू मंदिर में भक्ति संगीत का भजन गाता था तथा हिंदुओं की भाँति मंदिर में पूजा अर्चना करता था। उसके इस कृत्य पर हिंदुओं ने उसे मंदिर में प्रवेश से इस आधार पर मना किया कि तुम हिंदू नहीं हों। जैसूदास को इस बात पर अत्यंत दुःख हुआ और उसने न्यायालय में एक घोषणा-पत्र देकर यह कहा कि मैं हिंदू हूँ। न्यायालय ने जैसूदास को इस आधार पर हिंदू माना कि वह ईमानदारी से उक्त घोषणा कर रहा है, साथ ही उसका आचरण एवं आशय इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि वह न केवल उद्घोषणा कर रहा है बल्कि बतौर हिंदू के आचरण भी कर रहा है। इसी तरह कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी मत व्यक्त किया कि जब एक मुस्लिम धर्म के व्यक्ति ने धर्मांतरण से हिंदू धर्म ग्रहण किया व अपना नाम प्रफुल्ल कुमार बोस रखा, तो इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि उसने इस हेतु किसी धार्मिक रीति या अनुष्ठान को संपन्न किया या नहीं। क्योंकि न केवल उसके व्यवहार से बल्कि उसके आचरण से भी हिंदू धर्मांतरण करने के निश्चयात्मक सबूत है।

प्रति-संपरिवर्तन

यदि कोई व्यक्ति धर्म त्याग करके ग़ैर हिंदू बन जाए। इसके बाद वह पुनः धर्म परिवर्तन करके हिंदू हो जाए तो वह व्यक्ति पुनः हिंदू विधि द्वारा शासित होने लगेगा। **मारथम्मा बनाम मुरू स्वामी**[8] के वाद में मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठा कि क्या हिंदू धर्म में प्रति संपरिवर्तन (reconversion) विधिक होगा अथवा नहीं? इस वाद में एक व्यक्ति ने 1944 में हिंदू धर्म को त्याग दिया था एवं ईसाई धर्म को अंगीकृत कर लिया था। तत्पश्चात्, उसने 1948 में ईसाई धर्म को त्याग दिया और पुनः हिंदू धर्म को अंगीकृत कर लिया। मद्रास उच्च न्यायालय ने निर्णीत किया कि भारत संघ एक पंथ-निरपेक्ष राज्य है और प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपना धर्म-परिवर्तन कर सकता है किंतु यदि वह धर्म परिवर्तन के बाद पुनः धर्म प्रति संपरिवर्तन करता है तो यह भी मान्य होगा। इस वाद में न्यायाधीश पंचकेश अय्यर ने अभिनिर्धारित किया :

''अब भारत संघ एक धर्म निरपेक्ष राज्य है और हर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपनी पसंद के किसी भी धर्म का अनुकरण करे या किसी भी धर्म का बिल्कुल अनुकरण न करे। अतः किसी व्यक्ति का किसी धर्म में संपरिवर्तन तभी तक प्रवर्तित रहेगा जब तक कि उसमें संपरिवर्तित व्यक्ति पर दृढ़ रहता है और उसको किसी अन्य धर्म के लिए छोड़ नहीं देता।''

इसी प्रकार, **गंटूर मेडिकल कॉलेज बनाम मोहन राव**[9] के मामले में मोहन राव के माता-पिता हरिजन जाति के थे उन्होंने धर्म परिवर्तन कर ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। मोहन राव जोकि जन्म के समय ईसाई था, ने बाद में हिंदू धर्म स्वीकार कर पुनः अपनी जाति का सदस्य बन गया। न्यायालय के समक्ष प्रश्न उठा कि क्या उसकी संतान प्रति-परिवर्तन द्वारा पुनः उसी हरिजन जाति के सदस्य हो गए, जिसके सदस्य वे ईसाई होने से पूर्व थे। न्यायालय ने निर्णीत किया कि वह उस जाति का सदस्य तभी हो सकता है जबकि उस जाति के सदस्य उसे अपनी जाति के सदस्य के रूप में स्वीकर कर ले। जाति के सदस्यों को यह स्वतंत्रता है कि जिस

तरह वे किसी सदस्य को जाति से बहिष्कृत कर सकते हैं, उसी प्रकार किसी सदस्य को जाति में स्वीकार कर सकते हैं।

उच्चतम न्यायालय ने **चतुर्भुज विट्ठलदास जासानी बनाम मोरेश्वर परसराम**[10] के वाद में संपरिवर्तन के संदर्भ में नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। न्यायालय का कहना है कि संपरिवर्तन के परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। कहीं पर तो संपरिवर्तन पहले वाले पंथ के विरुद्ध कटुता और कट्टरता भर देता है और कहीं पर तो संपरिवर्तन केवल नाम मात्र का होता है। अतः धर्म-संपरिवर्तन के परिणामों को धर्म या पंथ निरपेक्ष दृष्टिकोण से देखने पर तीन कारकों पर विचार करना पड़ता है : (1) पुराने निकाय अर्थात् पंथ की प्रतिक्रियाएँ, (2) स्वयं व्यक्ति का अपना आशय और (3) नई व्यवस्था या पंथ के नियम।

एस. अनबलगन बनाम बी देवराजन[11] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि यदि जाति में प्रायश्चित्त के कर्मकांड का आचार नहीं है, तो प्रति संपरिवर्तन के लिए कर्मकांड संपन्न करना आवश्यक नहीं है। आगे न्यायालय का मत है कि भारतवासियों में जाति-व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी है कि दूसरे धर्म में संपरिवर्तन होने पर भी इसके चिह्न अदृश्य नहीं होते। यदि वे अदृश्य हो भी जाते हैं, तो प्रतिसंपरिवर्तन पर पुनः दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इस वाद में प्रति संपरिवर्तन के ऊपर एक अति महत्त्वपूर्ण नियम का प्रतिपादन करते हुए न्यायाधीश फजल अली ने कहा :

''हमारे अभिमत में जब कोई व्यक्ति ईसाई या किसी अन्य धर्म में संपरिवर्तन कर लेता है, तो उसकी मूल जाति ग्रहण-ग्रस्त हो जाती है और ज्यों ही वह व्यक्ति अपने जीवन-काल में अपने मूल धर्म में प्रति संपरिवर्तन कर लेता/लेती है, तो ग्रहण हट जाता है और जाति स्वतः पुनःजीवित हो जाती है।''

मेनका गाँधी बनाम इंदिरा गॉधी[12] के वाद में संजय गाँधी के पिता जो पारसी थे और माँ इंदिरा गाँधी हिंदू थी। दिल्ली उच्च न्यायालय ने निर्णीत किया कि दोनों में से एक हिंदू है और उनका लालन-पालन हिंदू रीति-रिवाज़ों से हुआ है। अतः संजय गाँधी हिंदू थे।

अद्यतन स्थिति

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने नूरजहाँ के वाद के निर्णय का हवाला देते हुए उस याचिका को खारिज़ कर दिया जिसमें कि धर्म-परिवर्तन कर ऐसा विवाह किया गया था और दंपत्ति को पुलिस द्वारा सुरक्षा और संरक्षण की माँग की गई थी। बाद में दो जजों की बेंच ने **सलामत अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[13] के वाद में 16 दिसंबर, 2014 निर्णीत किया कि नूर जहाँ के वाद का निर्णय अच्छी विधि प्रस्तुत नहीं करता है।

According to the petition filed by Advocate Aldanish Rein, the impugned order passed by the High Court is bad in law and serves as a 'wrong precedent' by declaring that inter faith marriage between consenting adults can not be solemnised by way of conversion solely for the purpose of marriage. He also

prayed that the order would ultimately leave the intending inter faith couples at the mercy of their families and other hate mongering organizations which might lead to a threat to their safety. According to Adv. Aldanish "The order triggered the State of UP to pass an Ordinance due to which hundreds of couples have been harassed over the past month."

उच्चतम न्यायालय ने अपने 16 दिसंबर, 2020 के निर्णय में उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने से मना करते हुए सलाह दिया कि याचिकाकर्त्ता को उच्च न्यायालय में जाना चाहिए न कि अनुच्छेद 32 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में आना चाहिए, न्यायालय ने पूछा, 'आप उच्च न्यायालय क्यों नहीं जाते? अनुच्छेद 32 के अंतर्गत यह उपचार नहीं है कि उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करें। यदि वे कुछ नहीं करते तो हमारे पास आइए।

बाद में उच्चतम न्यायालय ने वकील की याचिका को खारिज़ कर दिया और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने से मना कर दिया।

उल्लेखनीय है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एकल बेंच ने सितंबर, 2020 में **प्रियांशी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[14] के वाद में 2014 में पारित नूरजहाँ बेगम बनाम अंजली मिश्रा और अन्य[15] के वाद का हवाला दिया गया जिसमें स्पष्ट रूप से निर्णीत किया गया था कि विवाह हेतु धर्म परिवर्तन अस्वीकार है। इस वाद में दंपत्ति को पुलिस संरक्षण देने की प्रार्थना की थी जिसमें लड़की ने अपना हिंदू धर्म त्याग करते हुए इस्लाम में धर्म परिवर्तन किया और फिर मुस्लिम लड़के से निकाह किया। इस वाद में एकमात्र मुद्दा यह था कि क्या लड़की द्वारा इस्लाम धर्म क़बूल कर मुस्लिम लड़के से निकाह करना जबकि उसे इस्लाम की जानकारी और इस्लाम में विश्वास नहीं के बराबर था, ऐसा धर्म परिवर्तन वैध है! न्यायालय ने विवाह को, जोकि धर्मपरिवर्तन के बाद किया गया था, अवैध घोषित करते हुए निर्णीत किया कि :

"Once the alleged conversion was under cloud, the Constitutional Court was obliged to ascertain the wish and desire of the girls as they were above the age of 18 years. To disregard the choice of a person who is of the age of the majority would not only be antithetic to the freedom of choice of a grown up individual but would also be a threat to the concept of unity in diversity."

धर्म परिवर्तन का विवाह पर प्रभाव

इस विषय में दिल्ली उच्च न्यायालय ने **विलायत राज बनाम स्नीला**[16] के वाद में न्यायाधीश जस्टिस लीला सेठ ने मत व्यक्त किया कि हिंदू विवाह अधिनियम हिंदू पक्षकार के अन्य धर्म में परिवर्तन के पश्चात् भी लागू होगा जब तक कि अधिनियम के अंतर्गत हिंदू विवाह को विच्छेद नहीं कर दिया जाता है। उच्चतम न्यायालय ने एक महत्त्वपूर्ण वाद **सरला मुगदल बनाम भारत सरकार**[17] के वाद में भी स्पष्ट किया गया कि हिंदू धर्म परिवर्तन कर अन्य धर्म में जाकर किया गया विवाह भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत द्विविवाह के अपराध का दोषी माना जाएगा साथ ही विवाह भी शून्य होगा। इस वाद में तीन प्रश्न महत्त्वपूर्ण थे, 1. क्या एक हिंदू

पति, जो हिंदू विवाह अधिनियम के अंतर्गत विवाह किया है, मुस्लिम धर्म में परिवर्तन कर पुनः विवाह कर सकता है! क्या ऐसा दूसरा विवाह, जो पहले विवाह को विच्छेद किए बिना किया जाए, वैध होगा यदि पहली पत्नी हिंदू बनी रहती है! और तीसरा, धर्म परिवर्तन के पश्चात् पति भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अंतर्गत द्विविवाह का दोषी होगा? यह उल्लेखनीय है कि सरला मुगदल के वाद के एक न्यायाधीश जस्टिस **कुलदीप सिंह ने शाहबानो बेगम के वाद**[18] में दिए गए निर्णय का उल्लेख करते हुए भारत सरकार से आग्रह किया कि सरकार भारत में समान नागरिक संहिता लागू कराने पर ज़ोर दे।

अंत में उच्चतम न्यायालय ने इस पर पूर्ण विराम लगाते हुए महत्त्वपूर्ण वाद **लिली थॉमस बनाम भारत संघ**[19] के वाद में निर्णीत किया कि धर्म श्रद्धा का विषय है। इसका संबंध दिल तथा दिमाग़ की गहराइयों एवं भावनाओं से जुड़ा होता है तथा कोई भी व्यक्ति आसानी से धर्म परिवर्तन मात्र बहु-विवाह की प्रथा का लाभ लेने के लिए नहीं कर सकता है। इस वाद में न्यायालय ने यह भी कहा कि धर्म परिवर्तन मात्र से ही स्वतः विवाह-विच्छेद नहीं हो जाता तथा धर्म परिवर्तन के पश्चात् भी पति तथा पत्नी का संबंध तब तक बना रहता है जब तक कि उसे हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के उपबंधों के अंतर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित न हो जाए।

हालाँकि समय-समय पर धर्म-परिवर्तन जैसे नाजुक मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय ने काफ़ी संयम दिखाया और इस बात पर ज़ोर दिया कि समय आ गया है जब अनुच्छेद 44 के अंतर्गत राज्य को समान नागरिक संहिता को लागू करने के संबंध में सार्थक प्रयास करना चाहिए। न्यायालय ने सरकार से आग्रह किया कि वे इस संबंध में अधिनियम बनाए जिससे कि स्थिति पूरी तरह से स्पष्ट हो सके।[20] बाद में पुनः उच्चतम न्यायालय ने **जॉन वैलामाटन बनाम भारत सरकार**[21] के वाद में उक्त मत को दोहराया और कहा कि यह खेद का विषय है कि संविधान लागू होने के दिन से आज तक समान नागरिक संहिता बनाने की तरफ़ ध्यान नहीं दिया गया है। समान नागरिक संहिता द्वारा ही धर्म में विवाह और अन्य विषयों से संबंधित विरोधाभासों को दूर कर राष्ट्रीय सद्भावना को क़ायम किया जा सकता है।

अभी हाल में ही उत्तर प्रदेश राज्य ने 'उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020' पारित किया है, अन्य शब्दों में लोग इसे 'लव-जिहाद' का नाम दे रहे हैं। 24 नवंबर, 2020 को इस संबंध में एक अध्यादेश उत्तर प्रदेश केबिनेट ने पारित किया था जिसे कि 28 नवंबर, 2020 को राज्यपाल महोदया ने अनुमोदित कर दिया और अब यह अधिनियम बन गया है। इस अधिनियम के अंतर्गत अवैध धर्म परिवर्तन की स्थिति में यह अजमानतीय अपराध की श्रेणी में आएगा और इसमें 10 वर्ष की कारावास की सज़ा का प्रावधान है।

निष्कर्ष

उपरोक्त के आधार पर अंत में कहा जा सकता है कि धर्म-परिवर्तन व्यक्ति की आस्था का विषय है, जिसे विधि की परिधि में बाँधा नहीं जा सकता है। धर्म-परिवर्तन का एकमात्र

मानदंड यह है कि व्यक्ति ने पूर्ण सद्भाव और पूरी पवित्रता से दूसरे धर्म को अंगीकृत किया है। कोई छल-कपट, लालसा, मज़बूरी या दवाब नहीं होना चाहिए, यदि है तो फिर ऐसा धर्म-परिवर्तन वैध नहीं माना जाएगा। साथ ही यह भी अब स्पष्ट है कि धर्म परिवर्तन के बाद विवाह अपने आप स्वतः विघटित नहीं होता है जब तक कि विधिपूर्वक उस विवाह को विघटित न कर दिया जाए साथ ही दोषी पक्षकार भारतीय दंड संहिता के उल्लंघन का भी दोषी माना जाएगा। लेखक का यह मत है कि तकनीकी बारीकियों को देखते हुए उचित होगा कि धर्म परिवर्तन के नियम को संहिताबद्ध कर दिया जाए और एक विधायन इस संबंध में संसद द्वारा पारित किया जाना उचित होगा।

❑

संदर्भ

1. https://www.livelaw.in/amp/top-stories/supreme-court-religious-conversion-marriage-allahabad-high-court-protection-aldanish-rein-167316
2. (1994) 3 एस.सी.सी. 1
3. जे.एन. पांडेय, भारत का संविधान, 2001 पृ. 262
4. पारस दीवान, आधुनिक हिंदू विधि, 2015 पृ. 5
5. अब्राहम बनाम अब्राहम, (1863) 8 एम.आई.ए. 195
6. ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 2352
7. 1975 के.एल.टी. 55
8. ए.आई.आर. 1951 मद्रास 888
9. (1976) एस.सी. 1904
10. ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 236
11. ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 411
12. ए.आई.आर. 1984 दिल्ली 428
13. रिट पिटिशर न. 57068/2014
14. रिट पिठिशन न. 14288/2020
15. रिट पिटिशर न. 57068/2014
16. ए.आई.आर. 1983 दिल्ली 351
17. (1995) 3 एस.सी.सी. 635.
18. मोहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानो बेगम, ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 945
19. (2000) 6 एस.सी.सी. 224
20. महर्षि अवधेश बनाम (1994) सप्ली. (1) एस.सी.सी. 713
21. (2003) 6 एस.सी.सी. 611

अनुराधा सिंह

नारी सशक्तिकरण एवं भारत का संविधान

भारतीय संविधान में सामाजिक समानता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान मानव समाज में महिलाओं की अहम भूमिका रही है। फिर भी महिलाओं की अनदेखी होती है। उन्हें कभी-कभी तो क्रूर हिंसा और अपराध का सामना करना पड़ता है। सरकार की तमाम नीतियों के बावजूद भी महिलाओं के अंदर असुरक्षा की भावना रहती है प्राचीन समय से ही नारी पर अनेक अत्याचार किए जाते थे और वह शोषण तथा यातना का शिकार होती रही है। परंतु 20वीं सदी में नारी का गौरव पुनः लौटने लगा और नारी को पर्याप्त सम्मान एवं संरक्षण मिलने लगा और नारी पुरुषों के साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर चलने लगी। यहाँ तक की सत्ता में भी नारी की भागीदारी सुनिश्चित होने लगी। महिला सशक्तिकरण का मुद्दा संसार के लगभग सभी क्षेत्रों में बना हुआ है। सन् 1975 में 8 मार्च को अंर्तराष्ट्रीय महिला दिवस मनाने की शुरुआत हुई वियना के मानवाधिकारों के विश्व सम्मेलन में 1993 में महिलाओं के अधिकारों को भी स्वीकृति मिलना नारी सशक्तिकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण क़दम है। संवैधानिक उपबंधों में नारियों को बराबरी का हक़ दिलाया है तथा अधिनियमों ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया है। ऐसे में महिलाओं के दायित्वों की रूपरेखा भी नए परिवेश के साथ बदल रही है और बदलाव स्वतंत्रता के पश्चात् ही प्रारंभ हो गया था। महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में महात्मा गांधी ने अपने आंदोलनों असहयोग आंदोलन हो या सविनय अवज्ञा आंदोलन, में स्त्रियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया। महिला सशक्तिकरण को मूर्त रूप देने के लिए आवश्यक है कि महिलाओं के शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि पक्षों को ध्यान में रखते हुए महिला सशक्तिकरण की कठिनाईयों का समाधान ढूँढ़ा जाए। नारी सशक्तिकरण के लिए इनकी दशा में सुधार लाना अति आवश्यक है। पूरे समाज को महिलाओं के प्रति जागरूक होना चाहिए। महिला सशक्तिकरण में भारतीय संविधान ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसके कारण अनेक क्षेत्रों में महिलाओं को पुरुषों के सामान अवसर मिले हैं। महिलाओं के शिक्षा का स्तर सुधारने में संविधान की अहम भूमिका रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा स्तर बढ़ा है। बेटियों को भी बेटों के समान बराबर का दर्जा शिक्षा में दिया जाने लगा है। किसी ने सच कहा है कि --

''जब हम एक पुरुष को शिक्षित करते हैं, तो हम एक व्यक्ति को शिक्षित कर रहे होते

है परंतु जब एक कन्या/महिला को शिक्षित करते हैं तो हम पूरे परिवार को या पूरे राष्ट्र या मानवता को शिक्षित कर रहे होते है।" सरकार द्वारा 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया गया तथा महिला सशक्तिकरण की नीति भी लागू की गई थी। वर्ष 2001 से वर्तमान समय तक महिलाओं की स्थिति में सुधार आया है और वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई हैं। अधिकतर महिलाओं ने घर के साथ-साथ बाहर भी अपना मोर्चा संभाल रखा है। स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की स्थिति में उनको सशक्त करने में संविधान का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसके साथ ही न्यायिक प्रक्रिया का भी उनकी स्थिति सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके सुरक्षा के लिए न्यायालय द्वारा कई सख़्त क़ानून संविधान के प्रावधानों के अंर्तगत बनाए गए है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 में महिलाओं जो कुटुम्ब के द्वारा किसी भी प्रकार की हिंसा की पीड़ित हैं, के लिए संविधान के तहत गारंटीकत अधिकारों को अधिक प्रभावी संरक्षण प्रदान करने के लिए और उससे संबंधित या उसके अनुषांगिक मायनों के लिए उपबंधित करने के लिए संविधान महिलाओं के संरक्षण का अधिनियम है। हिंदू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम 2005 के अनुसार, **'दनम्मा सुमन सुरपुर और एक अन्य बनाम अमर और एक अन्य (2018) 3 एस.सी.सी.343'** के मामले में पुत्री को जन्म से ही सहदायिकी की सदस्य होगी और वह संयुक्त संपत्ति में एक सहदायिक के रूप में अंश प्राप्त करेगी एवं सहदायिक सदस्य के रूप में पुत्री संयुक्त संपत्ति के विभाजन का दावा भी कर सकेगी। उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय से महिलाओं के सशक्तिकरण में एक नया अध्याय जुड़ा है, जो उन्हें आर्थिक मज़बूती प्रदान करता है। इसी प्रकार, **अजय कुमार बनाम शरूती और अन्य (2019) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 726** के मामले में घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 के अंर्तगत उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि जहाँ किसी मृतक की अपने भाई के साथ संयुक्त व्यापार की संपत्ति या निवास व्यापार की संपत्ति है वहाँ उस मृतक की विधवा का भरण-पोषण इस प्रकार की संपत्ति से किया जाएगा। यह क़दम महिलाओं की सुरक्षा की दृष्टि में आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

संविधान का महिला सशक्तिकरण करने में योगदान रहा है परंतु उसकी परिभाषा नहीं दी गई है। नारी को पुरुषों की भाँति अर्थात् पुरुषों की बराबरी का अधिकार प्रदान किया जाना महिला सशक्तिकरण कहलाता है। लेकिन हमारा समाज पुरुष प्रधान है; उसी के फलस्वरूप महिलाओं को पुरुषों के बराबर नहीं देखा जाता है।

नारी सशक्तिकरण को ध्यान में रखते हुए संविधान में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को अनुच्छेद 243 (घ) में 1/3 स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता एवं अनुच्छेद 15 में धर्म मूलवंश जाति लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध किया गया है। अनुच्छेद 16 लोक नियोजन में महिलाओं को भी समान अवसर प्रदान करता है। समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था की गई है। महिलाओं को मात्र महिला होने के नाते पुरुष के समान कार्य करने पर समान वेतन दिए जाने से इनकार नहीं किया

जा सकता है। **उत्तराखंड महिला कल्याण परिषद बनाम स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश ए.आई.आर 1992 एस.सी. 1965** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा महिलाओं को पुरुष के समान ही वेतन व पदोन्नति के अवसर दिए जाने के विषय में दिशा निर्देश दिए गए हैं।

महिलाओं के लिए विशिष्ट उपबंध में संविधान के अनुच्छेद 15(3) में राज्यों को स्त्रियों एवं बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारत नहीं करेगी। इसके अनुसार, राज्य सरकार स्त्रियों एवं बालकों के लिए विशेष उपबंध कर सकती है क्योंकि महिलाओं की शारीरिक बनावट तथा अनेक अन्य परिस्थितियाँ उन्हें दुःखद स्थिति में कर देती हैं। उनकी शारीरिक कुशलता का संरक्षण करना जनहित का उद्देश्य है। भारतीय संविधान के अंतर्गत महिला सशक्तिकरण में निम्न तथ्यों में महिलाओं के लिए योगदान किए जाने पर बल दिया गया है।

1. महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन कर सुधार करना।
2. महिलाओं में जागरूकता का विकास करना।
3. अवसर की समानता प्रदान करना।
4. महिलाओं की शिक्षा का स्तर बढ़ाने पर बल दिया जाना।
5. महिलाओं की शारीरिक स्थिति में सुधार करना।
6. यौन-उत्पीड़न के विरुद्ध जटिल क़ानून बनाना।
7. महिला के शोषण के विरुद्ध क़ानून।
8. विधानमंडल में महिलाओं के लिए आरक्षण।
9. पुरुषों के बराबर समानता प्रदान करना।
10. महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति को सुधारना।
11. कम उम्र में विवाह के विरुद्ध क़ानून।
12. दहेज के विरुद्ध क़ानून।
13. घरेलू हिंसा के कार्यों के विरुद्ध संरक्षण।
14. संपत्ति के अधिकार में बराबरी का दर्जा देने का क़ानून।
15. सार्वजनिक उपक्रम में महिलाओं का आरक्षण दिया जाना।

हम जानते हैं कि महिलाएँ अपने कार्यक्षेत्र में बढ़-चढ़कर आगे आई हैं। विभिन्न सेवाओं में उनका योगदान होने लगा है, इसके साथ ही कामकाजी महिलाओं का प्रतिशत बढ़ा है और उनके साथ ही उनके यौन-उत्पीड़न की घटनाएँ बढ़ने लगी हैं। जिसे रोकना न्यायालय ने अपना दायित्व समझा और **विशाखा बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 3011** में उच्चतम न्यायालय ने यौन-उत्पीड़न की घटनाओं की रोकथाम के लिए दिशा निर्देश जारी किए हैं।

भारतीय संविधान में अनैतिक व्यापार से सुरक्षा संविधान के अनुच्छेद 23 एवं 24 महिलाओं के शोषण के विरुद्ध उपचार प्रदान करता है, अनुच्छेद 23 मानव दुर्व्यापार एवं बेगार को प्रतिबंध करता है। मानव दुर्व्यापार में स्त्रियों का अनैतिक व्यापार तथा स्त्रियों का पशुओं के समान

क्रय विक्रय भी आता है। महिलाओं का अनैतिक व्यापार मानव दुर्व्यापार ही है। भारतीय संस्कृति में महिलाओं का अनैतिक व्यापार सामंत परिवार के लोगों द्वारा किया जाता रहा है जिसमें अबोध बालिकाओं को देवदासी बनाया जाता था इसको रोकने के लिए संसद द्वारा स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 पारित किया गया।

भारतीय संविधान द्वारा रैगिंग की सुरक्षा : भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्राप्त एवं दैहिक स्वतंत्रता का मूल अधिकार को रैगिंग की सुरक्षा हेतु माना गया है। शैक्षणिक संस्थाओं में महिलाओं की रैगिंग की पीड़ा दूर करने में न्यायालय ने पहल की और समय-समय पर प्राचार्यों एवं शिक्षण संस्थाओं के प्रबंधकों को रैगिंग रोकने के दिशा-निर्देश दिए।

भारतीय पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण : महिलाओं की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु संविधान का 23 वा संशोधन अपना ही महत्त्व रखता है। सन् 1992 में संविधान संशोधन कर पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थानों को आरक्षित किया गया जिसे **कृष्णा कुमार मिश्रा बनाम बिहार राज्य (1987) 1 एस.सी. सी. 378** द्वारा चुनौती दी गई थी लेकिन न्यायालय ने उसे अस्वीकार कर दिया। 74वें संशोधन द्वारा नगर पालिका में भी महिलाओं को आरक्षित कर दिया गया।

भारतीय संविधान के मूल कर्त्तव्य द्वारा महिला सशक्तिकरण : संविधान के 42वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 51(क) में मूल कर्त्तव्यों को उल्लेखित किया गया है इसमें स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान दिया गया है। अनुच्छेद 51 क(ड़) में उल्लेखित है कि ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह भारत के सभी लोगों में समरक्षता और समान भ्रातृत्व की गणना का निर्माण करे जो धर्म भाषा प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के प्रतिकूल हो।''

हमारे देश में स्त्रियाँ अनेक कुरीतियों का शिकार थीं जिसे रोकने के लिए कई अधिनियम बनाए गए जिसमें प्रमुख तौर पर राजस्थान सती निवारण अधिनियम 1987 है। इसी प्रकार, अन्य कुरीतियों को रोकने के लिए संविधान द्वारा विभिन्न अधिनियम महिलाओं को सशक्तिकरण प्रदान करने हेतु समय-समय पर बनाए गए जिसमें दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 में दहेज की माँग को दंडनीय अपराध घोषित किया। दहेज मृत्यु को गंभीर अपराध की श्रेणी में मानते हुए भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 304(बी) में आजीवन कारावास के दंड का प्रावधान किया गया। इसी प्रकार, घरेलू हिंसा के संरक्षक के लिए 'घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005' पारित किया गया। इसके अलावा बालिकाओं का बाल-विवाह से निजात दिलाने में क़ानूनी संरक्षक प्रदान किया गया जिसमें 'बाल विवाह (निषेध)' अधिनियम 2006 के अंतर्गत बाल विवाह को दंडनीय अपराध माना गया। महिला सशक्तिकरण के रास्ते में निम्न बाधाएँ आती रही हैं।

1. महिला शारीरिक श्रम : संविधान के अनुच्छेद 15(3) के अनुसार महिलाएँ शारीरिक शक्ति में पुरुषों की भांति सशक्त नहीं होती हैं वे उतना शारीरिक एवं कठोर श्रम करने में

समक्ष नहीं है, जितना कि पुरुष कर सकते हैं। जोख़िम के कार्य में महिलाओं को नहीं रखा जाता। विधि द्वारा भी इनके लिए विशेष उपबंध किए गए हैं जिसमें कारख़ाना अधिनियम 1948 में महिलाओं के विशेष उपबंध है, खान अधिनियम 1952 में भी महिलाओं के लिए विशिष्ट प्रावधान है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 में भी महिलाओं को पुरुष से अलग उपबंध किए गए हैं।

2. भारत में ग्रामीण परवेश की महिलाएँ : भारत की अधिकांश महिलाएँ अशिक्षा, बेरोज़गारी, कुपोषण और कई प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त हैं। स्वतंत्रता के 73वें वर्ष में भी महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर में सुधार नहीं हुआ है। 70 प्रतिशत महिलाएँ एनीमिया से ग्रस्त हैं। 25 प्रतिशत बच्चों की माताएँ कुपोषण के कारण प्रसव अवधि के पूर्व ही बच्चे को जन्म दे देती हैं जिससे उनका स्वास्थ्य आजीवन ही बीमारियों से ग्रस्त रहता है महिलाओं में शिक्षा की कमी उनके स्वास्थ्य एवं बालक की स्थिति का मुख्य कारण है।

3. कामकाजी महिलाओं के सशक्तिकरण के संदर्भ में : कार्यस्थल पर कार्य करने वाली महिलाओं हेतु उच्चतम न्यायालय ने **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य ए.आई.आर. 1997 एस. सी. 3011** में विभिन्न दिशा-निर्देश दिए जिसमें अश्लील टिप्पणी एवं संकेत करना यौन संपर्क का प्रस्ताव करना था अनुरोध करना, कामोत्तोजक चित्रों का प्रस्ताव करना या अनुरोध करना यौन-उत्पीड़न माना गया। परंतु विडंबना यह है कि महिलाओं को दिन प्रतिदिन इस तरह की घटनाओं का सामना कर यौन-उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। वे कभी अपनी नौकरी के जाने के डर से या समाज की प्रतिष्ठा के वजह से इनका शिकार होती रहती हैं।

4. सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक शक्तियों के द्वारा लिंग आधारित छेड़छाड़ : भारतीय समाज में लैंगिक असमानता प्राचीन समय से ही महिलाओं को शक्तिशाली पुरुष समाज द्वारा पीड़ित एवं प्रताड़ित किया जाता रहा है। पुरुषों द्वारा महिलाओं का उत्पीड़न, छेड़छाड़ एवं बलात्कार मानव समाज की प्राचीन समस्याएँ हैं। प्रारंभ से ही पुरुषों ने स्त्री को भोग की वस्तु समझा है हालाँकि विधि में स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय से हमला करने के विरुद्ध अनेक क़ानून बना दिए गए जिसे भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 354 से धारा 354(घ) तक उल्लेखित किया गया है, तथा कठोरतम कारावास का प्रावधान इसमें किया गया है, परंतु इसके बावजूद भी छेड़छाड़ तथा लैंगिक उत्पीड़न की घटनाएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। जिससे विधि के दायित्व पर उगलियाँ उठती है।

5. कन्या-भ्रूण-हत्या : सामाजिक, सांस्कृतिक कारणों एवं पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था वाले समाज में लड़की या बेटी को वंश परंपरा की घटक नहीं माना जाता है। लड़की को पराया धन माना जाता है। लड़के की तीव्र चाहत में कन्या-भ्रूण होने पर बार-बार गर्भपात से महिलाओं की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पंजाब, हरियाणा आदि राज्यों में लड़कियों की संख्या कम होने से अन्य राज्यों से लड़कियों को खरीदा जाता है और यही नहीं, एक ही परिवार में से दो सगे भाइयों से उनका विवाह कर दिया जाता है। भारतीय दंड

संहिता 1860 की धारा 312 से 316 तक इस संबंध में प्रावधान किए गए हैं। इसके अलावा 1994 में पूर्व भ्रूण परीक्षण तकनीक (विनियमन एवं दुरुपयोग का निवारण अधिनियम 1994 सन् 2003 में संशोधन द्वारा इसे गर्भधारण और प्रसव पूर्व निदान तकनीक लिंग चयन प्रतिरोध) अधिनियम 1994 कर दिया गया फिर भी लोगों के द्वारा गर्भधारण और प्रसव पूर्ण निदान तकनीक का दुरुपयोग कर लिंग चयन कर गर्भपात की घटनाएँ की जाती हैं।

उपरोक्त सभी पहलुओं पर प्रकाश डालने के पश्चात् यह तथ्य प्रकट होते हैं कि महिलाओं की क्षमताओं और उनकी कुशलता को बढ़ाने के लिए उन्हें जागरूक बनाने के प्रयास करने की अभी लंबे समय तक आवश्यकता है। अधिकांश ग्रामीण वर्ग की महिलाएँ संभावनाओं एवं क्षमताओं से युक्त घर होने के बावजूद सशक्तिकरण एवं संवैधानिक अधिकारों की चेतना से वंचित है। सशक्तिकरण का पहला आयाम महिलाओं में शिक्षा का प्रसार आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान जागृत करना है। शहरों में शिक्षा समान सुधार आंदोलनों एवं प्रचार-प्रसार माध्यमों के प्रभाव से महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी है जिससे उन्हें कुछ हद तक समानता एवं स्वायत्तता का अधिकार प्राप्त हुआ है। परंतु ग्रामीण समाज में महिलाएँ परिवार एवं समाज में शोषण का शिकार हैं। सामाजिक असमानता और कुरीतियों के प्रभाव से महिलाएँ सामाजिक आर्थिक एवं मानसिक दृष्टि से दबाव में रहती हैं। विडंबना यह है कि काम धंधों में सतत सक्रिय रहने पर भी आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः पराश्रित है, इसके लिए इस वर्तमान दृष्टिकोण से परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण का अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव तो हुआ है। महिलाएँ अनेक क्षेत्रों में आगे बढ़ी हैं। परंतु आज भी महिलाओं की दशा का पुरुषों के बराबर पहुँचना काफ़ी बड़ी चुनौती है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए संविधान के अंर्तगत सरकार द्वारा अनेक नीतियों बनाई गई, परंतु अशिक्षा के कारण वह ऐसी योजनाओं से वंचित रहती हैं। महिलाओं को सशक्त करने के लिए सर्वप्रथम लोक सभा तथा राज्य सभा या फिर कोई भी राजनैतिक क्षेत्र हो उसमें महिलाओं को पुरुषों के बराबर आरक्षण मिलना चाहिए; ताकि उनकी राजनैतिक सक्रियता बढ़ सके। सरकार द्वारा सरकारी या ग़ैर-सरकारी संस्थाओं में विभिन्न योजनाओं में महिलाओं के लिए कार्यालय महिला प्रकोष्ठ का गठन एवं कर्मचारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। महिला बैंक की स्थापना भी इस दिशा में सराहनीय क़दम रहा है। सामाजिक मानसिकता में बदलाव करना आवश्यक है। हर क्षेत्र में महिलाओं को सम्मान दिया जाना आवश्यक है। वर्तमान में सबरीमाला मंदिर विवाद महिलाओं के साथ किए गए भेदभाव का स्पष्ट उदाहरण है। राजनीति में सक्रिय होने पर महिलाएँ स्वयं के सशक्तिकरण के प्रयास में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेगी। इसके साथ ही कॉरपोरेट घरानों की महिलाओं को महिला सशक्तिकरण की दिशा में अग्रणी भूमिका निभाते हुए महिला बाल विकास योजनाओं में पर्याप्त सहायता प्रदान कर उन्हे सशक्त करना का प्रयास करना चाहिए। कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न रोकने हेतु अधिनियम, रैगिंग के विरुद्ध अधिनियम, बाल-विवाह अधिनियम, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 इत्यादि में सरकारी क़दमों को इस दिशा में ठोस उपाय करने चाहिए। किंतु इसके अतिरिक्त अभी भी अनेक कार्य जो महिलाओं के उत्थान हेतु किए जाने चाहिए ताकि

कार्यालयों, घरों तथा कार्य के अन्य स्थलों पर प्रायः यौन-उत्पीड़न की घटनाओं को रोका जा सके। यद्यपि उच्चतम न्यायालय द्वारा महिलाओं के यौन-उत्पीड़न पर कई बार दिशा निर्देश जारी करने के बाद केंद्र सरकार द्वारा इस विषय पर क़ानून बनाया गया है फिर भी लैंगिक संवेदनशीलता को पाठ्यक्रम में शामिल करने पर विचार किया जाना चाहिए तथा स्त्रियों को स्वयं अपने मानव अधिकारों, संवैधानिक अधिकारों तथा क़ानूनी अधिकारों के प्रति जागरूक होना आवश्यक है। हमारे देश में महिलाओं की अस्मिता को लेकर समाज और व्यवस्था में अनेक विसंगतियाँ है; उसी कारण से महिला अस्मिता का मुद्दा बेहद जटिल होता रहा है। इस प्रकार की स्थिति से अचानक सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती है क्योंकि समाज और परंपरा से लेकर क़ानून और व्यवस्था तक एक विसंगति बनी हुई है जिसे तोड़ना संभव नहीं है। यदि इनमें बदलाव होते हैं तो महिलाओं की स्थिति में भी अधिक बदलाव देखने को मिलेंगे। हालाँकि संविधान में संशोधन कर महिलाओं को नए अधिकार प्रदान किए हैं लेकिन इन अधिकारों को क्रियान्वयन में तत्परता दिखाई नहीं देती है।

❑

संदर्भ

1. विधिक समसामयिक निबंध एवं अनुवाद, विजय विक्रम सिंह
2. भारत का संविधान, जे.एन. पांडेय
3. भारत में सामाजिक समस्याएँ, तेजस्कर पांडेय
4. भारत का संविधान, डॉ. डी.डी. वासु
5. परीक्षा मंथन, अनिल अग्रवाल
6. समूहिक हिंसा एवं दंडिक न्याय पद्धति, फरहत खान
7. विशेषाअधिकार प्राप्त वर्ग विचलन, फरहत खान
8. न्यायिक प्रक्रिया, डॉ. वसंती लाल बॉबेल
9. किशोर उपचारिकता, फरहत खान
10. भारत का संविधान और संविधानिक विधि, सुभाष कश्यप
11. जजमेंट एंड लॉ टुडे फरवरी मार्च, 2018, मदन लाल वर्मा
12. जजमेंट एंड का टुडे, जून 2019, मदन लाल वर्मा
13. Indian Constitutional law, M.P. Jain

डॉ. राज कुमार एवं डॉ. मनीष दलाल

भारत में वैवाहिक बलात्कार : एक गंभीर सामाजिक समस्या

वैवाहिक बलात्कार भारत में मौजूद सबसे बुरे कृत्यों में से एक है। वैवाहिक बलात्कार, बलात्कार की ही एक प्रजाति है। विवाहित महिलाएँ आमतौर पर वैवाहिक बलात्कार की शिकार होती हैं। यह भारत में लैंगिक न्याय के लिए सबसे बड़े ख़तरों में से एक है। यह एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो भारत में प्राचीनकाल से मौजूद है। भारतीय समाज ने वैवाहिक बलात्कार को कभी भी समस्या नहीं माना है। भारतीय समाज में कई कारणों से इसका विरोध शायद ही किसी ने किया हो। भारतीय विधायिका का रवैया इस संबंध में अलग नहीं है। भारतीय विधायिका को सुरक्षा, संरक्षा के लिए क़ानून बनाने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य दिया गया है। लेकिन देश से वैवाहिक बलात्कार की बुराई को ख़त्म करने में विधायिका की बिल्कुल भी दिलचस्पी नहीं है। भारतीय न्यायपालिका इस संबंध में एक आशा की किरण देती है लेकिन उसके हाथ बँधे हुए हैं क्योंकि क़ानूनों का मसौदा तैयार करना विधायिका का विशेषाधिकार है न कि न्यायपालिका का। जहाँ तक वैवाहिक बलात्कार का संबंध है, भारत में कोई प्रभावी क़ानून नहीं हैं। भारत में वैवाहिक बलात्कार को रोकने के लिए मज़बूत क़ानून लाने की आवश्यकता है।

कीवर्ड : बलात्कार, वैवाहिक बलात्कार, भारत, भारतीय समाज, भारतीय विधानमंडल, भारतीय कार्यकारी, भारतीय न्यायपालिका

प्राचीनकाल से ही भारत में विभिन्न सामाजिक बुराइयों का अस्तित्व है। सती प्रथा, बाल विवाह, जबरन विवाह, देवदासी प्रथा, पर्दा व्यवस्था आदि उन सामाजिक बुराइयों में से कुछ हैं। इन सामाजिक बुराइयों में से कई के समय बीतने के साथ भारत से ग़ायब हो गई हैं, लेकिन उनमें से कुछ अभी भी जीवित हैं। ऐसी सामाजिक बुराईयों में से एक वैवाहिक बलात्कार है जो भारत में प्राचीनकाल से ही मौजूद है और आधुनिक भारत में भी प्रचलित है। भारतीय समाज के साथ-साथ भारतीय विधायिका का रवैया भी वैवाहिक बलात्कार के ख़तरे के प्रति कुछ हद तक उदासीन है। हालाँकि, भारतीय न्यायपालिका का रवैया वैवाहिक बलात्कार की बुराई के प्रति इतना उदासीन नहीं है, बल्कि सामान्य रूप से भारतीय न्यायपालिका देश से वैवाहिक बलात्कार के उन्मूलन के पक्ष में है, जो कि विभिन्न ऐतिहासिक निर्णयों से स्पष्ट है। दुनिया के अधिकांश देशों में वैवाहिक बलात्कार निषिद्ध और दंडनीय अपराध है, लेकिन

भारत के संबंध में ऐसा नहीं है।[1] भारत में वैवाहिक बलात्कार के ख़तरे से निपटने के लिए कोई प्रभावी क़ानून नहीं हैं।[2]

वैवाहिक बलात्कार के मामले में अपराधी केवल जीवन साथी हो सकता है और कोई नहीं। जब पति अपनी पत्नी के साथ ग़ैर-सहमति से संभोग करता है, तो यह वैवाहिक बलात्कार है। इसी तरह, जब पत्नी अपने पति के साथ ग़ैर-सहमति से यौन संबंध बनाती है, तो यह भी वैवाहिक बलात्कार होता है। इसलिए, वैवाहिक बलात्कार एक लिंग तटस्थ अपराध है, लेकिन वैवाहिक बलात्कार के मामले में पत्नी शायद ही कभी अपराधी होती है, बल्कि यह पति ही होता है, जो अधिकांश मामलों में अपराधी होता है।[3] दुनिया भर से शायद ही कोई मामला सामने आया हो, जहाँ पत्नी ने अपने पति के साथ बलात्कार किया हो, जबकि इसके विपरीत बहुत असामान्य नहीं है। वैवाहिक संभोग हर शादी का एक अनिवार्य तत्त्व है इसमें कोई संदेह नहीं है लेकिन वैवाहिक बलात्कार पूरी तरह से विवाह की अवधारणा के ख़िलाफ़ है।[4]

इतिहास : सभी सामाजिक बुराइयों का एक इतिहास है और वैवाहिक बलात्कार इस तथ्य का अपवाद नहीं है। वैवाहिक बलात्कार कोई हालिया या आधुनिक घटना नहीं है। इसका इतिहास प्राचीन भारत में मिलता है। हालाँकि भारत में इस सामाजिक बुराई के अस्तित्व में आने की कोई सही तारीख़ ज्ञात नहीं है, लेकिन प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक भारत में इसके अस्तित्व को विवादित नहीं माना जा सकता। उस समय में, महिलाओं को आमतौर पर इनसानों के रूप में नहीं माना जाता था, बल्कि उन्हें शादी के बाद अपने पति की संपत्ति माना जाता था। वे स्वतंत्र नहीं थी और उनका कोई अधिकार नहीं था। इस ग़लत सोच ने भारत में वैवाहिक बलात्कार की बुराई को जन्म दिया। अतीत में वैवाहिक बलात्कार के कई उदाहरण हैं।

उस समय में, महिलाओं की सुरक्षा के लिए भारत में कोई प्रभावी क़ानून नहीं थे। महिलाओं के पास शायद ही कोई अधिकार था और उनके पास जो भी अधिकार थे, उन अधिकारों के बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी। इसके अलावा, महिलाएँ पूरी तरह से अपने पति पर निर्भर थीं और उनके पास अपने पति की इच्छा को सही ठहराने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। इन सभी कारकों ने भारत में वैवाहिक बलात्कार के उत्कर्ष के लिए भी योगदान दिया। इसलिए, वैवाहिक बलात्कार की बुराई का बहुत पुराना इतिहास है।[5]

भारतीय समाज : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो अलगाव में नहीं रह सकता है। उसे अपने अस्तित्व के लिए समाज की ज़रूरत है। उनकी कई ज़रूरतें जैसे सुरक्षा, साहचर्य, आजीविका, मनोरंजन आदि समाज में ही पूरी होती हैं। लेकिन हर समाज कई सामाजिक बुराइयों से पीड़ित होता है, जिसका उस समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सामना करना पड़ता है तो एक समाज में विभिन्न अच्छाइयों के साथ-साथ बुराईयाँ भी पाई जाती हैं।[6]

भारतीय समाज हमेशा से ही पुरुष प्रधान समाज रहा है। यह इस कारण से है कि आमतौर पर भारतीय समाज में वैवाहिक बलात्कार को ग़लत नहीं माना जाता है क्योंकि वैवाहिक बलात्कार

की शिकार आमतौर पर महिलाएँ ही होती हैं। अगर पुरुष वैवाहिक बलात्कार के शिकार होते तो यह भारत में बहुत पहले ही ग़ैर-क़ानूनी घोषित हो जाता। भारत में बहुत कम आवाज़ें हैं जो देश में वैवाहिक बलात्कार के निषेध और अपराधीकरण का समर्थन करती हैं। किसी भी सामाजिक बुराई के ख़ात्मे में समाज सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोई भी सामाजिक बुराई किसी समाज से तब तक नहीं मिटाई जा सकती जब तक कि समाज स्वयं उसे अस्वीकार नहीं करता। भारतीय समाज द्वारा वैवाहिक बलात्कार को अस्वीकार नहीं किया गया है, जिसके कारण यह भारत में सामाजिक समस्या बना हुआ है।[7]

भारतीय विधायिका

भारतीय विधायिका देश में वैवाहिक बलात्कार को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। लेकिन भारतीय विधायिका का रवैया इस विषय में बहुत उदासीन रहा है जहाँ तक भारत में वैवाहिक बलात्कार के अपराधीकरण का संबंध है इसके प्रस्तावों को बार-बार नकार दिया गया है। देश में वैवाहिक बलात्कार के अपराधीकरण के लिए भारतीय संसद में कई विधेयकों को पेश किया गया है, लेकिन उनमें से कोई भी किसी भी प्रकार के क़ानून में शामिल नहीं हो सका। भारतीय विधायिका द्वारा इस संबंध में कोई शीघ्रता नहीं दिखाई गई है। भारतीय विधायिका का इस विषय में दृष्टिकोण यह है कि देश में वैवाहिक बलात्कार के अपराधीकरण से भारत में विवाह की श्रद्धेय अवधारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और इससे देश में विवाह टूटने के अधिक मामले सामने आएँगे।[8]

भारतीय कार्यपालिका

भारतीय समाज और भारतीय विधायिका की तरह, भारतीय कार्यपालिका भी देश में वैवाहिक बलात्कार के अपराधीकरण के पक्ष में नहीं है। देश में वैवाहिक बलात्कार के अपराधीकरण के लिए कई अपीलें लगातार भारत की सरकारों को की गई हैं, लेकिन उनमें से किसी ने भी देश में वैवाहिक बलात्कार को रोकने की इच्छाशक्ति या साहस नहीं दिखाया है। देश में वैवाहिक बलात्कार के ग़ैर-अपराधीकरण के पक्ष में दिए गए तर्क यह है कि इस तरह के क़ानून विवाह की संस्था को नष्ट कर देंगे और देश में तलाक़ के अधिक मामलों को जन्म देंगे। इसलिए, भारतीय कार्यपालिका का रवैया भी इस संबंध में बहुत निराशाजनक है।[9]

भारतीय न्यायपालिका

भारतीय न्यायपालिका वैवाहिक बलात्कार की समस्या से निपटने के लिए बहुत सक्रिय भूमिका निभा रही है। भारत के उच्चतम न्यायालय के कई महत्त्वपूर्ण निर्णय हैं, जहाँ अदालत ने भारत में इसके अपराधीकरण को दोहराया है। इसी प्रकार, भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों ने भी अपने कई फ़ैसलों के माध्यम से देश में वैवाहिक बलात्कार के अपराधीकरण का आह्वान

किया है। लेकिन इस संबंध में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका बहुत सीमित है। क़ानून बनाना भारतीय विधायिका का काम है, भारतीय न्यायपालिका का नहीं।

भारत में क़ानून

भारत में बलात्कार के अपराधियों को दंडित करने के लिए क़ानून हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 376 में बलात्कार के लिए सज़ा का प्रावधान है। लेकिन जहाँ तक वैवाहिक बलात्कार की बुराई का सवाल है, तो इससे निपटने के लिए कोई विशेष क़ानून नहीं हैं।[10] आई.पी. सी. की धारा 375, अपवाद 2, के अनुसार भारत में एकमात्र क़ानून है जो वैवाहिक बलात्कार के पीड़ितों को कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान करता है। इसमें कहा गया है कि जहाँ एक पति ने अपनी पत्नी के साथ संभोग किया है जो 15 वर्ष से कम उम्र की है, उसे बलात्कार के लिए दंडित किया जा सकता है। लेकिन 15 साल की इस उम्र को भारत के सुप्रीम कोर्ट ने इंडिपेंडेंट थॉट बनाम यूनियन ऑफ इंडिया के मामले में अपने फैसले के जरिए 18 साल में बदल दिया है।[11] इसलिए, वर्तमान में भारत में क़ानून यह है कि अगर पति अपनी नाबालिग़ पत्नी के साथ संभोग करता है, तो उसे बलात्कार के लिए दंडित किया जा सकता है लेकिन एक बालिग पत्नी के पास ऐसा कोई उपाय नहीं है।[12] इसलिए, भारतीय क़ानून केवल वैवाहिक बलात्कार के पीड़ितों को आंशिक सुरक्षा प्रदान करते हैं।[13] भारत में वैवाहिक बलात्कार की बुराई को रोकने के लिए कोई सशक्त संरक्षण नहीं है।[14]

निष्कर्ष

इसलिए, अंत में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बलात्कार की तरह, वैवाहिक बलात्कार भी भारत में लैंगिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक बाधा है। जब तक भारत में इस तरह की बुराइयाँ मौजूद हैं, भारत में महिलाओं को कभी भी स्वतंत्र और स्वावलंबी नहीं कहा जा सकता है। वैवाहिक बलात्कार भारत में महिलाओं के जीवन में समानता के अधिकार को दिलाने में एक बाधा है।[15]

अगर भारत एक विकसित राष्ट्र बनना चाहता है तो भारत से वैवाहिक बलात्कार को पूरी तरह से समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि यह भारत के विकास में सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। लेकिन इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए भारतीय समाज, भारतीय विधायिका के साथ-साथ भारतीय कार्यपालिका को अपनी आदिम मानसिकता को बदलना होगा। भारत में वैवाहिक बलात्कार का अपराधीकरण तभी किया जा सकता है जब भारतीय समाज, विधायिका और कार्यपालिका इस संबंध में सक्रिय भूमिका निभाएँ। भारतीय न्यायपालिका भारत में वैवाहिक बलात्कार के अपराधीकरण के अपने दूरदर्शी निर्णयों के माध्यम से विधायिका और कार्यपालिका पर पर्याप्त दबाव बना सकती है। इसलिए, भारतीय समाज, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को वैवाहिक बलात्कार की बुराई के ख़िलाफ़ एकजुट होना होगा और तभी देश से ऐसी राक्षसी बुराई को ख़त्म किया जा सकता है।[16]

सुझाव

इसलिए, वैवाहिक बलात्कार के हर पहलू पर विस्तृत और गहन चर्चा के बाद, एक बात स्पष्ट है कि वैवाहिक बलात्कार एक गंभीर सामाजिक बुराई है जिसने भारतीय समाज को मज़बूती से घेर लिया है। देश से इस बुराई को ख़त्म करने की आवश्यकता है। उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं --

1. भारत में वैवाहिक बलात्कार का पूरी तरह से अपराधीकरण किया जाना चाहिए।
2. नाबालिग़ के साथ साथ बालिग़ विवाहित महिलाओं को भी वैवाहिक बलात्कार के ख़िलाफ़ क़ानूनी रूप से संरक्षित किया जाना चाहिए। इस संबंध में दोनों के बीच कोई अंतर नहीं होना चाहिए।
3. बलात्कार और वैवाहिक बलात्कार के लिए सज़ा समान होनी चाहिए।
4. वैवाहिक बलात्कार को बलात्कार के अपराध के, अपवाद के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और ऐसा करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अपवाद 2 को निरस्त किया जाना चाहिए।
5. भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान वैवाहिक बलात्कार पर उसी तरह लागू होने चाहिए जैसे वे बलात्कार पर लागू होते हैं।
6. वैवाहिक बलात्कार को एक लिंग तटस्थ अपराध बनाया जाना चाहिए।
7. पर्याप्त सुरक्षा उपायों को वैवाहिक बलात्कार क़ानूनों से जोड़ा जाना चाहिए ताकि वे किसी के द्वारा दुरुपयोग न किए जा सकें जैसे कि पति को अपनी पत्नी द्वारा वैवाहिक बलात्कार के आरोप में सीधे गिरफ़्तार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि इस संबंध में उचित जाँच न हो। आरोपी पति के परिवार के सदस्यों को ऐसे मामलों में परेशानी न हो आदि।
8. वैवाहिक बलात्कार के झूठे आरोप लगाने के लिए वैवाहिक बलात्कार क़ानूनों में अभियुक्त पर जुर्माना का प्रावधान भी होना चाहिए।
9. वैवाहिक बलात्कार को भी तलाक़ का एक विशिष्ट आधार बनाया जा सकता है।
10. वैवाहिक बलात्कार के मामलों से निपटने के लिए पूरे भारत में महिला न्यायाधीशों और महिला कर्मचारियों के साथ विशेष फास्ट ट्रैक कोर्ट स्थापित किए जाने चाहिए। ऐसे मामलों की मीडिया ट्रायल की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

❑

संदर्भ

* This article has been published in English language in 2019 in University of Rajasthan Law Journal

1. स्टेनर, मोनिका, 2019, वैवाहिक बलात्कार क़ानून, 13 जनवरी, 2020 को https://www.criminaldefenselawyer.com/matrimonial-rape-laws.html से पुनर्प्राप्त किया गया।

2. मकरकर, सार्थक, 2019, वैवाहिक बलात्कार : भारत में एक ग़ैर-आपराधिक अपराध, जनवरी 14, 2020 https://harvardhrj.com/2019/01/marital-rape-a-non-criminalized-crime-in-india/ से पुनर्प्राप्त।
3. बोर्डमैन, मैंडी, 2015, मेरे पति ने मेरे साथ बलात्कार किया, 15 जनवरी, 2020 https://time.com/3976180/marital-rape/ से लिया गया।
4. हार्टवेल-वॉकर, मैरी, 2018, वैवाहिक बलात्कार, 17 जनवरी, 2020 को https://psychcentral.com/lib/marital-rape/ से लिया गया।
5. घोष, रिंकू, 2019, वैवाहिक बलात्कार के बारे में क्या? Https://www.dailypioneer.com/2019/columnists/what-about-marital-rape.html से 19 जनवरी, 2020 को लिया गया।
6. मोनिका अरोड़ा, 2019, सामाजिक कलंक और बड़े पैमाने पर अशिक्षा के साथ, वैवाहिक बलात्कार को अपराध घोषित करने से महिलाओं को मदद मिलेगी? जनवरी 19, https://www.news18.com/news/opinion/opinion-with-social-stigma-and-rampant-illiteracy-will-declaring-marital-rape-an-officive-help-women-2132303.html से प्राप्त हुआ।
7. आहनाराजन, 2019, भारत की वैवाहिक बलात्कार समस्या, 16 जनवरी, 2020 को https://intpolicydigest.org/2019/02/14/india-s-marital-rape-problem/ से लिया गया।
8. साहिल आजम, 2019, वैवाहिक बलात्कार के मामलों को मान्यता देने से इनकार करना हम महिलाओं के जीवन पर विवाह के महत्त्व को समझते हैं। 19 जनवरी, 2020 को https://www.youthkiawaaz.com/2019/10/rape-inside-bedroom-ind-is-still-in-denial/ से लिया गया।
9. सुमेधा चौधरी, 2018, क्यों भारत में वैवाहिक बलात्कार का अपराधीकरण अभी भी एक दूर का सपना है।
10. डोमिनिक मोसबर्गेन, 2018, भारत में वैवाहिक बलात्कार अपराध नहीं है। लेकिन हाईकोर्ट के एक जज बदलाव के लिए ज़ोर दे रहे हैं। 19 जनवरी, 2020 को https://www.huffingtonpost.in/entry/india-marital-rape-gujarat-high-court_n_5ac571dce4b0aacd15b82b00?ri18n=true&guccounter=1&guce_referrer=aHR06H6M6H6M6MM से पुनः प्राप्त किया गया।
11. इंडिपेंडेंट थॉट बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, 2017, 10 एस.सी.सी. 800
12. क्रिना पटेल, 2019, द गैप इन मैरिटल रेप लॉ इन इंडिया : एडवोकेटिंग फॉर क्रिमिलाइज़ेशन एंड सोशल चेंज, 19 जनवरी, 2020 को https://ir.lawnet.fordham.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=2760&context=ilj से लिया गया।
13. संगमित्रा लोगानन्थन, 2019, वैवाहिक बलात्कार, 19 जनवरी, 2020 को http://www.legalservicesindia.com /article/2369/Marital-Rape.html से पुनःप्राप्त।

14. रहल, 2018, भारत में वैवाहिक बलात्कार, 19 जनवरी, 2020 को https://blog.ipleaders.in/marital-rape-india/ से लिया गया।
15. कल्पना शर्मा, 2017, भारत में वैवाहिक बलात्कार एक आपराधिक अपराध क्यों नहीं है? https://timesofindia.indiatimes.com/life-style/relationships/love-sex/Why-isnt-marital-rape-a-criminal-offence-in-India/articleshow/54223996.cms से 19 जनवरी, 2020 को पुनःप्राप्त।
16. शालू निगम, 2015, भारत में वैवाहिक बलात्कार से संबंधित सामाजिक और क़ानूनी विरोधाभास : संरचनात्मक असमानताओं को संबोधित करना, Abstract_id = 2613447 08 जनवरी, 2020 को https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm से लिया गया।

विधि भारती परिषद्
राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार

वर्ष 2005 से विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा हिंदी विधि लेखन को बढ़ावा देने के लिए विधि भारती परिषद् ने हिंदी विधि पुस्तकों पर 'राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार' प्रारंभ किए थे। विधि पुस्तकों पर प्रथम पुरस्कार 7,100/- रुपए, द्वितीय पुरस्कार 5,100/- रुपए, तृतीय पुरस्कार 3,100/- रुपए है।

वर्ष 2019 का राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार पिछले तीन वर्षों अर्थात् 2017, 2018 एवं 2019 में प्रकाशित विधि पुस्तकों पर दिया जाएगा। विधि भारती पुस्तक पुरस्कार का निर्णय एक तीन सदस्यीय पुस्तक पुरस्कार निर्णायक मंडल द्वारा किया जाएगा जो अंतिम होगा। पुरस्कार विधि भारती परिषद् के एक भव्य समारोह में प्रदान किए जाएँगे।

विधि भारती परिषद का संक्षिप्त परिचय : विधि भारती की स्थापना 1992 में तथा उसका पंजीकरण 1993 में किया गया। वर्ष 1994 में उसकी त्रैमासिक द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) पत्रिका 'महिला विधि भारती' का प्रकाशन आरंभ हुआ। पच्चीस वर्ष की अवधि में उसके 100-101 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इस पत्रिका को दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी से सर्वोत्तम संपादन का दो बार पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

पुरस्कार हेतु पुस्तकें भेजने की विधि : राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार के लिए विचारार्थ हिंदी विधि पुस्तक भेजने के इच्छुक लेखक कृपया पुस्तक की तीन प्रतियों के साथ 500/-- रुपए का बैंक ड्राफ्ट विधि भारती परिषद् के नाम से प्रेषित करें। लेखक पिछले तीन वर्षों में प्रकाशित एक से अधिक पुस्तकों के लिए प्रविष्ठियाँ भेज सकते हैं। पुरस्कार के विचारार्थ प्राप्त पुस्तकें किसी भी स्थिति में लौटाई नहीं जाएँगी।

विधि पुस्तकें भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च, 2021 होगी।

पुस्तकें भेजने का पता

विधि भारती परिषद्

बी.एच/48 (पूर्वी), शालीमार बाग, दिल्ली-110088

दूरभाष : 27491549, 45579335 **मोबाइल :** 9899651272, 9899651872

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

Website : vidhibharatiparishad.in

के.आर. पांडे

भारत रत्न श्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं संसद

श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने मार्च, 1977 में जनता पार्टी की सरकार में विदेश मंत्री का पद संभाला। उन दिनों मैं लोक सभा सचिवालय में कार्यरत था। विदेश मंत्री ने मुझे अपने स्टॉफ में काम करने के लिए बुलाया। कुछ औपचारिकताओं के बाद मेरी नियुक्ति विदेश मंत्रालय में हिंदी सहायक के पद पर हो गई। उनके साथ काम करते हुए मुझे बहुत कुछ सीखने का सौभाग्य मिला।

विदेश मंत्री का पद संभालने के बाद जब वाजपेयी जी साउथ ब्लॉक की सीढ़ियों से पहली मंज़िल में अपने कमरे की ओर जा रहे थे तो उन्हें देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू जी का चित्र नदारद मिला। इससे पहले संसद सदस्य की हैसियत से जब भी किसी मीटिंग के लिए साउथ ब्लाक जाते तो वे वहाँ पंडित नेहरू जी का फ़ोटो देख चुके थे। कमरे में पहुँचते ही उन्होंने फौरन विदेश सचिव श्री जगत मेहता को बुलाया और पूछा, ''सीढ़ियों से वह पंडित जी का चित्र कहाँ गया?'' उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया, चुप रहे। थोड़ी देर बाद वह दुबारा वहीं लगा दिया गया। उन्होंने सोचा होगा अब ग़ैर-कांग्रेस पार्टी की सरकार सत्ता में आ गई है, और शायद उन्हें वहाँ नेहरू जी का वह चित्र शायद पसंद न आए।

मई, 1964 में जब देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का देहांत हुआ तो उस समय वाजपेयी जी राज्य सभा के सदस्य थे। उन्होंने उच्च सदन में उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए अपना भाषण शुरू किया -- 'सभापति जी, एक सपना था, जो अधूरा रह गया। एक गीत था, जो गूँगा हो गया। एक लौ थी, जो अनंत में विलीन हो गई। सपना था एक ऐसे संसार का जो द्वभय और भूख से होगा, गीत था एक ऐसे महाकाव्य का, जिसमें गीता की गूँज और गुलाब की गंध थी, लौ थी एक ऐसे दीपक की, जो रात भर जलता रहा, हर अँधेरे से लड़ता रहा और हमें रास्ता दिखा कर एक प्रभाव में निर्वाण को प्राप्त हो गया। अंत में कहते हैं 'संसद में उनका अभाव कभी नहीं भरेगा। शायद तीन मूर्ति को उन जैसा व्यक्ति कभी भी अपने अस्तित्व से नहीं सार्थक करेगा। वह व्यक्तित्व, वह ज़िंदा-दिली, विरोधी को भी साथ ले कर चलने की वह भावना, वह सज्जनता, वह महानता शायद निकट भविष्य में देखने को नहीं मिलेगी। मतभेद होते हुए भी, उनके महान् आदर्शों के प्रति, उनकी प्रामाणिकता के प्रति, उनकी देशभक्ति के प्रति, उनके अटूट साहस और दुर्दम्य धैर्य के प्रति हमारे हृदयों में आदर के अतिरिक्त और

कुछ नहीं है।'

'इन शब्दों के साथ उस महान् आत्मा के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।'

27 मई, 1996 को अपनी सरकार का विश्वास मत हासिल करने के लिए जब अटल जी प्रधानमंत्री के नाते सदन में खड़े हुए तो उस दिन पंडित जवाहर लाल नेहरू की पुण्यतिथि थी। वे उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि देते हुए कहते हैं -- ''जब मैं पहली बार यहाँ आया तो नेहरू जी प्रधानमंत्री थे। कई वर्ष मैंने उन्हें काम करते हुए देखा। मैं उधर बैठता था। अभी भी उधर की याद भूला नहीं हूँ। लेकिन मैं काफ़ी पीछे बैठता था, क्योंकि संख्या बहुत कम थी। आज जो परिवर्तन हुआ है, भारतीय जनता पार्टी धीरे-धीरे अपनी संख्या बढ़ाती हुई, अपना प्रभाव बढ़ाती हुई। पहले प्रमुख दल बनी और आज सबसे बड़ी पार्टी के रूप में चुनाव के बाद उभरी, यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ, यह परिवर्तन इतिहास की बदलती हुई प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करता है।''

विदेश मंत्री की हैसियत से श्री वाजपेयी जी द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के 36वें अधिवेशन में 4 अक्टबूर, 1977 को हिंदी में दिए गए भाषण की सराहना आज भी पूरा देश करता है। संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी भारतीय नेता का तब हिंदी में यह पहला भाषण था। यह राष्ट्रभाषा के प्रति उनके गहरे प्रेम का द्योतक है। भाषण शुरू करते हुए वे कहते हैं, ''अध्यक्ष महोदय, मैं भले ही संयुक्त राष्ट्र संघ में नया हूँ; मेरा देश नया नहीं है। इस संस्था की स्थापना के समय से ही भारत का इससे निकट संबंध रहा है। इस सम्मान्य सभा को संबोधित करते हुए मुझे बड़े गौरव का अनुभव हो रहा है। अपने देश में बीस वर्ष से अधिक राष्ट्रीय संसद का सदस्य होने के नाते, विश्व के देशों की इस सभा में पहली बार भाग लेते हुए मुझे विशेष उल्लास हो रहा है।''

''मैं भारत की ओर से इस महासभा को आश्वासन देता हूँ कि हम एक विश्व के आदर्शों की प्राप्ति और मानव के कल्याण तथा उसकी कीर्ति के लिए त्याग और बलिदान की बेला में कभी पीछे पग नहीं हटाऊँगा।"

एक बार शिमला में विदेश मंत्रालय की संसदीय सलाहकार समिति की बैठक थी और उसके बाद शाम को वहीं रिज पर सार्वजनिक सभा आयोजित की गई थी। वहाँ उपस्थित जन-समूह को संबोधित करते हुए वाजपेयी जी ने कहा -- 'यहाँ इतनी अच्छी सभा चल रही है। कल दिल्ली के 'हिंदुस्तान टाइम्स' के चौथे या पाँचवें पृष्ठ में यह एक छोटी-सी ख़बर होगी। अगर पीछे से दो-चार लोग मुझे काले झंडे दिखाएँ तो कल अख़बारों में यह प्रमुख ख़बर के रूप में छपेगी। समझता हूँ -- 'मैं भी पत्रकार रहा हूँ। कुत्ता जब आदमी को काटता है तो वह ख़बर नहीं है। आदमी जब कुत्ते को काटता है तो वह ख़बर बन जाती है।'

अटल जी की विनोदपूर्ण वाणी से संसद भी अछूता नहीं रहता था। उन्हें लोक सभा में पब्लिक एकाउंट्स कमेटी के चेयरमैन की हैसियत से परिवार नियोजन के बारे में एक रिपोर्ट लोक सभा के पटल पर रखनी थी। अपने भाषण के शुरू में वह बोले, ''अध्यक्ष महोदय, मुझसे

ज़्यादा परिवार नियोजन कौन कर सकता है?" इसके जवाब में तत्कालीन माननीय अध्यक्ष श्री शिवराज पाटील ने कहा -- ''वाजपेयी जी, आप तो ज़रूरत से ज़्यादा ही परिवार नियोजन करते हैं।" सारा सदन ठहाकों से गूँज उठा।

अपने से बड़ों की इज़्ज़त वे सदा करते थे, भले ही वह किसी भी दल से संबंधित क्यों न हो। एक बार जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला ने उनसे मिलने का समय माँगा। वे हज प्रतिनिधि मंडल के बारे में उनसे कुछ विचार-विमर्श करना चाहते थे। अटल जी ने हमसे कहा कि शेख साहिब वरिष्ठ नेता हैं, वे यहाँ नहीं आएँगे, मैं उनसे मिलने जाऊँगा और वे उनसे मिलने सीधे जम्मू-कश्मीर भवन गए।

विरोधी विचारधारा के नेता भी उनका पूरा सम्मान करते थे। 1969 में वाजपेयी जी की दिल्ली के एम्स में पेट के अल्सर का ऑपरेशन हुआ था। कुछ दिन बाद जनसंघ पार्टी का राजस्थान के बाडमेर में सत्याग्रह का कार्यक्रम था, जिसमें उन्हें गिरफ़्तारी देनी थी। राजस्थान में तब कांग्रेस के श्री बरकतुल्लाह खाँ मुख्यमंत्री थे, उन्होंने अपनी एयर कंडीशन कार वाजपेयी जी को गिरफ़्तार करने के लिए भेजी तथा पुलिस को सख़्त हिदायत दी कि उनका अभी कुछ दिन पहले ऑपरेशन हुआ है। उनका पूरा ध्यान रखें। उन्हें कोई तकलीफ़ नहीं होनी चाहिए।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी विदेश मंत्री नियुक्त होने से पहले 1, फिरोजशाह रोड में रहते थे। उनके साथ वाले बंगले 5 फिरोजशाह रोड में पश्चिम बंगाल के कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेता राज्य सभा के सांसद श्री भूपेश गुप्त रहते थे। दोनों अलग-अलग राजनीतिक विचारधारा के बावजूद अच्छे पड़ोसी के साथ ही परम मित्र भी थे। वाजपेयी जी के घर जब मिठाई आती थी तो वह कहते थे -- पहले भूपेशदा को देकर आओ। वह कहा करते थे अच्छे पड़ोसी का धर्म निभाने में राजनीति अथवा विचारधारा बाधक नहीं होनी चाहिए।

श्री सीताराम केसरी कांग्रेस के वरिष्ठ नेता थे। वे 1967 में बिहार के कटिहार से लोक सभा के सदस्य, 1971 से 2000 तक पाँच बार बिहार से ही राज्य सभा के सदस्य तथा श्रीमती इंदिरा गांधी, श्री राजीव गांधी एवं श्री नरसिंह राव के मंत्रिमंडल के सदस्य के साथ-साथ 1996 से 1998 तक अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष भी रहे। 2000 में उन्हें छठी बार राज्य सभा का टिकट नहीं मिला। दिल्ली छोड़ने से पहले वे शिष्टाचारवश प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी से मिलने गए। वाजपेयी जी ने पूछा -- केसरी जी अब कहाँ रहेंगे आप? केसरी जी ने कहा -- दिल्ली में मेरा कोई मकान नहीं है। पटना जा रहा हूँ, वहीं रहूँगा। वाजपेयी जी बोले केसरी जी हम आपको पटना नहीं जाने देंगे और उसी समय पुराना किला रोड निवास जिसमें वे लंबे समय से रह रहे थे, उन्हें आजन्म अलॉट कर दिया। उस बंगले में वह कुछ महीने ही रह पाए। 24 अक्टबूर, 2000 को उनका देहांत हो गया। यह थी वाजपेयी जी की उदारता अपने राजनैतिक विरोधियों के प्रति भी।

घर आए मेहमान को निराश न करना अटल जी के स्वभाव में शामिल था और इसी स्वभाववश वे घर आए पत्रकारों को भी खाली हाथ नहीं भेजते, नज़राने में कुछ-न-कुछ 'मसाला'

दे ही देते थे। मुझे याद है एक दिन रविवार को उनके घर कुछ पत्रकार मिलने आ गए। उन्होंने एक स्लिप अंदर भेजी जिसमें लिखा था -- 'वाजपेयी जी बाहर डेढ़ दर्जन पत्रकार आपका इंतज़ार कर रहे हैं। वह आज आपके साथ चाय पीना चाहते हैं।'' (पत्रकार श्री वाजपेयी के घर के बाहर लॉन पर ही बैठ गए।) पहले तो वाजपेयी जी ने उनसे मिलने से मना कर दिया। दो घंटे बाद फिर पूछा कि 'क्या वह लोग चले गए हैं?'' जब मैंने बताया कि वह अभी भी आपका इंतज़ार कर रहे हैं तो बाहर आए। वहीं लॉन में खड़े होकर उनसे बात करने लगे। बातों-बातों में उन्होंने कह दिया 'मैं तो संगठन में काम करना चाहता था। मंत्री पद तो मेरे ऊपर थोपा गया है। मैं यहाँ खुश नहीं हूँ।'' अगले दिन 'हिंदुस्तान टाइम्स' में यह प्रमुख ख़बर थी कि श्री अटल बिहारी वाजपेयी विदेश मंत्री पद से त्याग-पत्र देकर जनता पार्टी के अध्यक्ष बनने जा रहे हैं।

16 मई, 1996 को वाजपेयी जी ने प्रथम बार प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। 17 मई को सवेरे उनका फ़ोन आया -- तुम कब आ रहे हो? प्रधानमंत्री जी का फोन सुन कर मैं अवाक् रह गया। फिर बोले तुमने नरसिंह राव जी की बहुत सेवा की है, तुम वहीं रहो। हम तुम्हें एडज़स्ट कर लेंगे। (तब मैं नरसिंह राव जी के साथ काम करता था।)

जब वे प्रधानमंत्री थे, एस.पी.जी. के एक समारोह में मैं उनसे मिला। प्रोटोकोल से बँधे और सुरक्षा से घिरे प्रधानमंत्री को जब मैंने प्रणाम किया तो बोले -- ''पांडेय इतनी दूर से क्यों नमस्ते कर रहे हो?'' यहीं था उनका प्यार जिससे वे अपने किसी भी कर्मचारी या कार्यकर्ता को बाँधे रखता था।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी सफल राजनीतिज्ञ एवं पत्रकार के साथ-साथ कवि भी थे। वह कहा करते थे यदि मैं राजनीति में नहीं आता तो आज मैं कवि होता। कोई भी कवि हृदय कभी भी कविता से वंचित नहीं रह सकता। अपने काव्य संग्रह 'न दैत्यं न पलायनम्' में लिखते हैं -- 'सचाई यह है कि कविता और राजनीति साथ-साथ नहीं चल सकती। ऐसी राजनीति, जिसमें प्रायः प्रतिदिन भाषण देना ज़रूरी है और भाषण भी ऐसा जो श्रोताओं को प्रभावित कर सके, तो फिर कविता की एकांत साधना के लिए समय और वातावरण ही कहाँ मिल पाता है। मैंने जो थोड़ी-सी कविताएँ लिखी हैं, वे परिस्थिति-सापेक्ष हैं और आस-पास की दुनिया को प्रतिबिंबित करती हैं।

दिसंबर, 2004 को श्री नरसिंह राव जी का देहांत हुआ। मैं उनके अस्थि-क्लश को गंगा में प्रवाहित करने हरिद्वार जा रहा था। मुजफ्फर नगर के पास पहुँचने पर माननीय वाजपेयी जी का फ़ोन आया। बोले -- ''अब खाली बैठोगे या कुछ करोगे?'' हरिद्वार से आ कर उनसे मिला। बोले तुम पुराने अनुभवी हो, मेरे ऑफिस का काम संभाल लो। मैंने कहा -- ''सर, अब मैं सरकारी नौकरी से रिटायर हो गया हूँ। पूरा समय आपके कार्यालय को दूँगा।'' मुस्कराते हुए बोले -- ''रिटायर भी हो गए हो?'' दफ्तर में आया तो उनके निजी सचिव श्री अश्विनी वाष्णेय जी बोले -- तुम जिस वेतनमान में रिटायर हुए हो वह हम नहीं दे पाएँगे। क्या उससे

निम्न वेतनमान में काम कर सकोगे? मैंने कहा मैं एक चपरासी के वेतनमान में भी यहाँ काम करने को तैयार हूँ। माननीय अटल जी ने मुझे बुलाया है यही मेरे लिए बहुत गौरव की बात है। पूर्व प्रधानमंत्री के सहायक निजी सचिव के रूप में पूरे पाँच साल तक मुझे उनके सान्निध्य में फिर काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

कुछ दिन बाद माननीय वाजपेयी जी के निवास-स्थान से श्रीमती राजकुमारी कौल (जिन्हें हम माता जी कह कर संबोधित करते थे) का फ़ोन आया कि अटल जी की तबियत अब ठीक नहीं रहती है। कभी आ कर उनसे मिल लो। मैं उनके निवास-स्थान 6-ए, कृष्णा मेनन मार्ग गया। जैसे ही मैं उनके कमरे में पहुँचा वह सिर्फ़ इतना बोले -- ''कहिए।'' मैंने जब उनसे पूछा -- ''सर, कैसे हैं?'' तो कुछ नहीं बोले। सामने दीवार पर लगे टेलीविज़न को देखते रहे। कुछ देर बैठने के बाद मैंने कहा -- ''सर, आप जल्दी ठीक हो जाइए, आप यहाँ से बोलेंगे और मैं यहीं बैठकर लिखूँगा।'' इतना कह कर उन्हें प्रणाम कर लौट आया। उस समय मुझे यह पता नहीं था कि यह मेरी उनसे आख़िरी मुलाक़ात है।

❑

हम दो, हमारे दो

दो से ज्यादा कभी न हों

कोई भी धर्म, कोई हो जाति

दो ही हों, सब की थाती।

डॉ. फरहत खान

राष्ट्रीय शिक्षा नीति : महत्त्व व चुनौतियाँ

''पढ़ो, लिखा है दीवारों पर मेहनतकश का नारा
पढ़ो, पोस्टर क्या कहता है, वो भी दोस्त तुम्हारा
पढ़ो, अगर अंध विश्वासों से पाना है छुटकारा
पढ़ो, किताबें कहती हैं सारा संसार तुम्हारा'' **-- सफदर हाशमी**

सफदर हाशमी का यह मशहूर गीत न केवल जीवन में शिक्षा की आवश्यकता बल्कि उसके महत्त्व को भी रेखांकित करता है। जीवन में शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से वर्तमान सरकार ने शिक्षा क्षेत्र में व्यापक बदलावों के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को मंजूरी दे दी है। करीब तीन दशक के बाद देश में नई शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई है। इससे पूर्व वर्ष 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई गई थी और वर्ष 1992 में इसमें संशोधन किया गया था। उम्मीद की जा रही है कि यह शिक्षा नीति शिक्षा क्षेत्र में नवीन और सर्वांगीण परिवर्तनों की आधारशिला रखेगी। विदित है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को तैयार करने के लिए विश्व की सबसे बड़ी परामर्श प्रक्रिया आयोजित की गयी थी जिसमें देश के विभिन्न वर्गों से रचनात्मक सुझाव माँगे गए थे।

प्राप्त सुझावों और विभिन्न शिक्षाविदों के अनुभव तथा के. कस्तूरी रंगन समिति की सिफ़ारिशों के आधार पर शिक्षा तक सबकी आसान पहुँच, समता, गुणवत्ता, वहनीयता और जवाबदेही के आधारभूत स्तंभों पर निर्मित यह नई शिक्षा नीति सतत विकास के लिए 'एजेंडा 2030' के अनुकूल है और इसका उद्देश्य 21वीं शताब्दी की आवश्यकताओं के अनुकूल स्कूल-कॉलेज की शिक्षा को अधिक समग्र, लचीला बनाते हुए भारत को एक ज्ञान आधारित जीवंत समाज और वैश्विक महाशक्ति में बदल कर प्रत्येक छात्र में निहित अद्वितीय क्षमताओं को सामने लाना है।

भारतीय शिक्षा की विकास यात्रा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968

- स्वतंत्र भारत में शिक्षा पर पहली नीति कोठारी आयोग (1964-1966) की सिफ़ारिशों पर आधारित थी।
- शिक्षा को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित किया गया।

- 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिये अनिवार्य शिक्षा का लक्ष्य और शिक्षकों का बेहतर प्रशिक्षण और योग्यता पर फोकस।
- नीति ने प्राचीन संस्कृत भाषा के शिक्षण को भी प्रोत्साहित किया, जिसे भारत की संस्कृति और विरासत का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाता था।
- शिक्षा पर केंद्रीय बजट का 6 प्रतिशत व्यय करने का लक्ष्य रखा।
- माध्यमिक स्तर पर 'त्रिभाषा सूत्र' लागू करने का आह्वान किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

- इस नीति का उद्देश्य असमानताओं को दूर करने विशेष रूप से भारतीय महिलाओं, अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जाति समुदायों के लिये शैक्षिक अवसर की बराबरी करने पर विशेष ज़ोर देना था।
- इस नीति ने प्राथमिक स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' लांच किया।
- इस नीति ने इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के साथ 'ओपन यूनिवर्सिटी' प्रणाली का विस्तार किया।
- ग्रामीण भारत में ज़मीनी स्तर पर आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के लिए महात्मा गांधी के दर्शन पर आधारित 'ग्रामीण विश्वविद्यालय' मॉडल के निर्माण के लिए नीति का आह्वान किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संशोधन, 1992

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में संशोधन का उद्देश्य देश में व्यावसायिक और तकनीकी कार्यक्रमों में प्रवेश के लिये अखिल भारतीय आधार पर एक आम प्रवेश परीक्षा आयोजित करना था।
- इंजीनियरिंग और आर्किटेक्चर कार्यक्रमों में प्रवेश के लिए सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त प्रवेश परीक्षा (Joint Entrance Examination -- JEE) और अखिल भारतीय इंजीनियरिंग प्रवेश परीक्षा (All India Engineering Entrance Examination -- AIEEE) तथा राज्य स्तर के संस्थानों के लिए राज्य स्तरीय इंजीनियरिंग प्रवेश परीक्षा (SLEEE) निर्धारित की।
- इसने प्रवेश परीक्षाओं की बहुलता के कारण छात्रों और उनके अभिभावकों पर शारीरिक, मानसिक और वित्तीय बोझ को कम करने की समस्याओं को हल किया।

शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों?

बदलते वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मौजूदा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी।

शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिये नई शिक्षा नीति की आवश्यकता थी।

भारतीय शिक्षण व्यवस्था की वैश्विक स्तर पर पहुँच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा के वैश्विक मानकों को अपनाने के लिए शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शिक्षा की पहुँच, समता, गुणवत्ता, वहनीयता और उत्तरदायित्व जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया गया है। नई शिक्षा नीति के तहत केंद्र व राज्य सरकार के सहयोग से शिक्षा क्षेत्र पर देश की जीडीपी के 6 प्रतिशत हिस्से के बराबर निवेश का लक्ष्य रखा गया है। नई शिक्षा नीति के अंतर्गत ही 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' (Ministry of Human Resource Development -- MHRD) का नाम बदल कर 'शिक्षा मंत्रालय' (Education Ministry) करने को भी मंजूरी दी गई है।

प्रमुख बिंदु

प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित प्रावधान

1. 3 वर्ष से 8 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शैक्षिक पाठ्यक्रम का दो समूहों में विभाजन --

- 3 वर्ष से 6 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए आँगनवाड़ी/बालवाटिका/प्री-स्कूल (Pre-School) के माध्यम से मुफ़्त, सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण 'प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा' (Early Childhood Care and Education -- ECCE) की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- 6 वर्ष से 8 वर्ष तक के बच्चों को प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा 1 और 2 में शिक्षा प्रदान की जाएगी।

2. प्रारंभिक शिक्षा को बहुस्तरीय खेल और गतिविधि आधारित बनाने को प्राथमिकता दी जाएगी।
3. NEP में MHRD द्वारा 'बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान पर एक राष्ट्रीय मिशन' (National Mission on Foundational Literacy and Numeracy) की स्थापना की माँग की गई है।
4. राज्य सरकारों द्वारा वर्ष 2025 तक प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा-3 तक के सभी बच्चों में बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने हेतु इस मिशन के क्रियान्वयन की योजना तैयार की जाएगी।

भाषायी विविधता को संरक्षण

NEP-2020 में कक्षा-5 तक की शिक्षा में मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को अध्यापन के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया है, साथ ही इस नीति में मातृभाषा को

कक्षा-8 और आगे की शिक्षा के लिए प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है।

स्कूली और उच्च शिक्षा में छात्रों के लिए संस्कृत और अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं का विकल्प उपलब्ध होगा परंतु किसी भी छात्र पर भाषा के चुनाव की कोई बाध्यता नहीं होगी।

पाठ्यक्रम और मूल्यांकन संबंधी सुधार

इस नीति में प्रस्तावित सुधारों के अनुसार, कला और विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक विषयों एवं पाठ्यक्रम व पाठ्येतर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं होगा।

कक्षा-6 से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल कर दिया जाएगा और इसमें इंटर्नशिप (Internship) की व्यवस्था भी दी जाएगी।

'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्' (National Council of Educational Research and Training -- NCERT) द्वारा 'स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा' (National Curricular Framework for School Education) तैयार की जाएगी।

छात्रों के समग्र विकास के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कक्षा-10 और कक्षा-12 की परीक्षाओं में बदलाव किए जाएँगे। इसमें भविष्य में समेस्टर या बहुविकल्पीय प्रश्न आदि जैसे सुधारों को शामिल किया जा सकता है।

छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन के लिए मानक-निर्धारक निकाय के रूप में 'परख' (PARAKH) नामक एक नए 'राष्ट्रीय आकलन केंद्र' (National Assessment Centre) की स्थापना की जाएगी।

छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन तथा छात्रों को अपने भविष्य से जुड़े निर्णय लेने में सहायता प्रदान करने के लिए 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' (Artificial Intelligence -- AI) आधारित सॉफ्टवेयर का प्रयोग।

शिक्षण व्यवस्था से संबंधित सुधार

शिक्षकों की नियुक्ति में प्रभावी और पारदर्शी प्रक्रिया का पालन तथा समय-समय पर लिए गए कार्य-प्रदर्शन आकलन के आधार पर पदोन्नति।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् वर्ष 2022 तक 'शिक्षकों के लिये राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक' (National Professional Standards for Teachers -- NPST) का विकास किया जाएगा।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा NCERT के परामर्श के आधार पर 'अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' [National Curriculum Framework for Teacher Education -- NCFTE) का विकास किया जाएगा।

वर्ष 2030 तक अध्यापन के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता 4-वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री का होना अनिवार्य किया जाएगा।

उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान

NEP-2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में 'सकल नामांकन अनुपात' (Gross Enrolment Ratio) को 26.3 प्रतिशत (वर्ष 2018) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है, इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जाएगा।

NEP-2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है, इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाएगा (1 वर्ष के बाद प्रमाणपत्र, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक)।

विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिए एक 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' (Academic Bank of Credit) दिया जाएगा, जिससे अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

नई शिक्षा नीति के तहत एम.फिल. (M-Phil) कार्यक्रम को समाप्त कर दिया गया।

भारत उच्च शिक्षा आयोग

चिकित्सा एवं क़ानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक एकल निकाय के रूप में भारत उच्च शिक्षा आयोग (Higher Education Commission of India -- HECI) का गठन किया जाएगा।

HECI के कार्यों के प्रभावी और प्रदर्शिता पूर्ण निष्पादन के लिए चार संस्थानों/निकायों का निर्धारण किया गया है --

विनियमन हेतु : राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामकीय परिषद् (National Higher Education Regulatory Council -- NHERC)

मानक निर्धारण : सामान्य शिक्षा परिषद् (General Education Council -- GEC)

वित्त पोषण : उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद् (Higher Education Grants Council -- HEGC)

प्रत्यायन : राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद् (National Accreditation Council -- NAC)

देश में आईआईटी (IIT) और आईआईएम (IIM) के समकक्ष वैश्विक मानकों के 'बहुविषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय' (Multidisciplinary Education and Research Universities -- MERU) की स्थापना की जाएगी।

संबंधित चुनौतियाँ

महँगी शिक्षा : नई शिक्षा नीति में विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया

गया है, विभिन्न शिक्षाविदों का मानना है कि विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश से भारतीय शिक्षण व्यवस्था महँगी होने की संभावना है। परिणामस्वरूप निम्न वर्ग के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण हो जाएगा।

शिक्षकों का पलायन : विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश से भारत के दक्ष शिक्षक भी इन विश्वविद्यालयों में अध्यापन हेतु पलायन कर सकते हैं।

शिक्षा का संस्कृतिकरण : दक्षिण भारतीय राज्यों का यह आरोप है कि 'त्रि-भाषा' सूत्र से सरकार शिक्षा का संस्कृतिकरण करने का प्रयास कर रही है।

संसद की अवहेलना : विपक्ष का आरोप है कि भारतीय शिक्षा की दशा व दिशा तय करने वाली इस नीति को अनुमति देने में संसद की प्रक्रिया का उल्लंघन किया गया। पूर्व में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 भी संसद के द्वारा लागू की गई थी।

मानव संसाधन का अभाव : वर्तमान में प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शिक्षकों का अभाव है, ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत प्रारंभिक शिक्षा हेतु की गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक समस्याएँ हैं।

❑

संदर्भ

1. Draft of National Education Policy, 2019
2. https://www.indiatoday.in/pti-feed/story/india-improves-student-class room-pupil-teacher-ratios-survey-1156529-2018-01&29
3- India's student&teacher ratio lowest among compared countries, lags behind Brazil and China
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संशोधन, 1992
7. मोदी सरकार की नई शिक्षा नीति के सामने होंगी चुनौतियाँ, डॉ. नीलम महेंद्र

डॉ. एस.एस. दास एवं कीर्तिका सिंह

जम्मू एवं कश्मीर भूमि (अधिभोक्ताओं में स्वामित्व का निहितकरण) अधिनियम 2001(रोशनी एक्ट) : राज्य के भूमि घोटाले का समसामयिक विश्लेषण

रोशनी अधिनियम : एक परिचय

जम्मू एवं कश्मीर भूमि (अधिभोक्ताओं में स्वामित्व का निहितकरण) अधिनियम, 2001 (जम्मू एंड कश्मीर लैंड वेस्टिंग ऑफ ओनरशिप टूओक्कुपेंट्स) एक्ट) अपने एक उद्देश्य के कारण रोशनी अधिनियम के रूप में भी जाना जाता है। इस अधिनियम के प्रमुख रूप से दो उद्देश्य थे -- एक बिजली परियोजनाओं (पावर प्रोजेक्ट) के लिए वित्त की व्यवस्था करना, एवं दूसरा राज्य की भूमि का स्वामित्व अधिभोक्ताओं या क़ब्ज़ाधारियों को प्रदान करना। इन्हीं उद्देश्यों के अनुसरण में अवैध क़ब्ज़ाधारियों को नाम मात्र के मूल्यों पर राज्य की मूल्यवान भूमि को अंतरित कर दिया गया। प्रत्यक्ष रूप से यह प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया गया कि उक्त धन को राज्य में पावर प्रोजेक्ट को स्थापित करने में व्यय किया जाएगा। परंतु उक्त उल्लिखित उद्देश्यों की पृष्ठभूमि में प्रथमतः मुख्य उद्देश्य यह था कि राज्य के उच्च वर्ग को अनुचित लाभ पहुँचाया जाए एवं दूसरा विशेषकर, जम्मू की जनसांख्यिकी (demography) को परिवर्तित किया जाए। दोनों उद्देश्यों के गहन निहितार्थ थे, इस कारण रोशनी एक्ट का गहन विश्लेषण आवश्यक है। ज्यों ही राज्य की भूमि को कौड़ियों के दाम पर उच्च वर्ग एवं अवैध क़ब्ज़ाधारियों को अंतरित किया गया, यहाँ तक कि कृषि भूमि को निःशुल्क ही अवैध क़ब्ज़ाधारियों को अंतरित कर दिया गया, वैसे ही इसका परिलक्षित उद्देश्य भी स्वतः समाप्त हो गया। अधिनियम का निम्न विश्लेषण करने के पश्चात् यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाएगा कि अधिनियम में प्रत्यक्षतः उल्लिखित उद्देश्य मात्र एक दिखावा ही था; न कि जम्मू एवं कश्मीर की जनता का लोक-कल्याण करना था। अधिनियम के कुत्सित क्रियान्वयन से राज्य की विधायिका एवं कार्यपालिका के आशय का विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है।

रोशनी अधिनियम के मुख्य तथ्यात्मक बिंदु

- जम्मू एवं कश्मीर राज्य भूमि (अधिभोक्ताओं में स्वामित्व का निहितकरण) अधिनियम 2001 को मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला के कार्यकाल में उद्घोषित किया गया।

- अधिनियम जो कि 'रोशनी एक्ट' के रूप में जाना जाता है, राज्य में बिजली परियोजनाओं के विस्तार के लिए अवैध क़ब्ज़ाधारियों को राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य पर विधिक रूप से भूमि को निहित करने का प्रावधान करता है, अर्थात् विधिक स्वामित्व का अंतरण अवैध क़ब्ज़ाधारियों को करता है।
- अधिनियम के अनुसार क़ब्ज़ा निर्धारण करने के लिए प्रथमतः सीमांत समय/तिथि (cut off year) मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला के कार्यकाल में प्रथम बार वर्ष 1990 को निर्धारित किया गया। अर्थात् जिन व्यक्तियों ने 1990 तक किसी भी भूमि पर अवैध क़ब्ज़ा किया था, उनको इस अधिनियम के द्वारा वैध रूप से स्वामित्व प्रदान कर दिया गया।
- सीमांत समय (cut off year) को वर्ष 2005 में पुनः फारूक अब्दुल्ला सरकार ने संशोधित करके 2004 कर दिया, अर्थात् जिन्होंने 2004 तक अवैध रूप से किसी की भूमि पर क़ब्ज़ा किया होगा, उनको इस अधिनियम के अंतर्गत स्वामित्व का अंतरण कर दिया जाएगा।
- इस सीमांत वर्ष को महबूबा मुफ्ती एवं कांग्रेस की गठबंधन सरकार ने एक बार पुनः संशोधित करके वर्ष 2007 को सीमांत वर्ष (cut off year) घोषित कर दिया।
- उपर्युक्त संशोधन सरकार के मंतव्य को स्पष्ट करते हैं।
- अनुमान व्यक्त किया जाता है कि इस अधिनियम के द्वारा जम्मू कश्मीर राज्य के राजकोष की 25 हज़ार करोड़ रुपए के लगभग की क्षति पहुँचाई गई।
- तथैव वह किन-किन व्यक्तियों को लाभ पहुँचाया गया, उनकी पहचान क्या थी, यह एक जाँच का विषय है, अभी तक जितनी जाँच की गई है वह अपर्याप्त है।
- जम्मू कश्मीर की प्रजा के आक्रोश एवं दबाव के अंतर्गत महालेखा नियंत्रक, भारत सरकार (The Comptroller and Auditor General of India hereafter used as CAG) ने वर्ष 2013-14 में अनियमितताओं का संज्ञान लिया एवं जाँच प्रारंभ हुई।
- वर्ष 2015 राज्य सतर्कता संगठन (the State Vigilance Organisation) राज्य सरकार के 20 अधिकारियों को अधिनियम के दुरुपयोग करने के लिए आरोपित किया, परंतु किसी को भी उच्च रसूख के कारण अभियोजित नहीं किया जा सका।
- जबकि 2015 से लेकर अधिनियम के निरस्त होने तक अर्थात् 2018 तक भूमि का अवैध अधिग्रहण राज्य पदाधिकारियों के संरक्षण में तीव्र गति से चलता रहा।
- वर्ष 2018 में राज्य के राज्यपाल सत्यपाल मलिक के कार्यकाल में अधिनियम को निरस्त कर दिया गया।
- प्रोफेसर एस.के. भल्ला एवं अधिवक्ता अंकुर शर्मा की याचिका का संज्ञान लेते हुए, उच्च न्यायालय ने प्रारंभ से सारे आवंटन निरस्त करने की माँग को स्वीकार किया एवं केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (Central Bureau of Investigation hereafter used as CBI) को जाँच करने के आदेश दिए गए।

लोक न्यास के सिद्धांत का उल्लंघन (Violation of Public Trust Doctrine)

हमारा वर्तमान विधिक तंत्र एवं विधि व्यवस्था अंग्रेज़ी कॉमन लॉ पर आधारित है। लोक न्यास का सिद्धांत भी उसी का अंग है। लोक न्यास का सिद्धांत विधिशास्त्र का एक अभिन्न अंग है। इसके अनुसार राज्य सभी प्राकृतिक स्रोतों जोकि प्रकृति से ही जनसामान्य के उपयोग के लिए होते हैं, का एक न्यासी (trustee) मात्र है। उसे जनकल्याण के लिए उक्त स्रोतों का उपयोग करना होता है। राज्य का समस्त जनसमुदाय बिना किसी भेदभाव के समस्त प्राकृतिक स्रोतों जैसे जंगलों, नदियों, पहाड़ों, झरनों, समुद्री किनारों आदि का उपयोग कर सकता है/आनंद ले सकता है। बहता हुआ जल, हवा, जंगल एवं संपूर्ण नाजुक पारिस्थितिक तंत्र (fragile ecosystem) पर समान रूप से सभी व्यक्तियों का अधिकार है। प्रत्येक राज्य का यह विधिक कर्त्तव्य है कि वह समस्त प्राकृतिक स्रोतों एवं राज्य की संपत्ति की रक्षा एक न्यासी की तरह जनता के हितार्थ करें, न कि व्यक्तिगत लाभार्थियों को सशक्त करें एवं जनता की राजनीतिक पहचान को ही संकट में डाल दें। उपर्युक्त अधिनियम के द्वारा लोकन्यास के सिद्धांत का प्रथम दृष्टया उल्लंघन किया गया है। एमिनेंट डोमेन के सिद्धांत (Doctrine of Eminent Domain) का दुरुपयोग किया गया है।

रोशनी अधिनियम का न्यायिक पुनर्विलोकन : प्रोफेसर एस.के. भल्ला बनाम जम्मू कश्मीर राज्य (2020)

सर्वप्रथम, श्री एस.सी. पांडे प्रिंसिपल अकाउंटेंट जनरल (ऑडिट) जम्मू एंड कश्मीर ने 8 मार्च, 2014 को एक चौंका देने वाली प्रेस कांफ्रेंस करके जम्मू कश्मीर राज्य में रोशनी एक्ट के अंतर्गत बड़े भूमि घोटाले को सार्वजनिक रूप से उजागर किया जिसका संज्ञान महालेखा नियंत्रक भारत सरकार (CAG) द्वारा भी लिया गया था। श्री पांडे ने मीडिया को बताया कि इसके द्वारा कई हजार करोड़ रुपए का नुक़सान राज्य की जनता का किया गया है। उन्होंने कई राज्य सरकार के अधिकारियों पर भी कटाक्ष किया जिन्होंने लेखा अधिकारियों को सहयोग नहीं प्रदान किया। श्री पांडे ने यह भी शंका जाहिर की कि मुख्यतः राज्य छह जिलों अनंतनाग, जम्मू, उधमपुर, पुलवामा, श्रीनगर एवं बड़गाम में बड़ी अनियमितताएँ की गई हैं। उन्होंने मीडिया को यह भी बताया कि इस भूमि आवंटन अनियमितता को ढकने (cover up) का पर्याप्त प्रयास किया गया। अनुमानित 20,00,000 कनाल (ज़मीन नापने की एक इकाई) से भी अधिक भूमि को भू-माफियाओं, सरकारी अधिकारियों, विधायकों, मंत्रियों, पूर्व विधायकों एवं पूर्व मंत्रियों को आवंटित की गई है। इस प्रेस कॉन्फ्रेंस के पूर्व प्रख्यात राष्ट्रीय दैनिक अंग्रेज़ी समाचार-पत्र 'द हिंदू' (The Hindu) ने 5 मार्च, 2014 को एक लेख 'सीएजी रिपोर्टऑब्सेर्वेस यूज इरेगुलेरिटीज इन रोशनी स्कीम ('The CAG report observes use irregularities in Roshani scheme') प्रकाशित किया। इस लेख ने देश के प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान इस ओर आकर्षित किया।

सी.ए.जी. रिपोर्ट 2014 (CAG Report) उल्लिखित करती है कि रोशनी अधिनियम के परिपालन में नवंबर, 2006 में सरकार ने 20,64,972 कनाल भूमि के आवंटन में 25,448 करोड़ रुपए की अनुमानित राजकोषीय आय का अंदाज़ा लगाया था। जबकि 3,48,160 कनाल के आवंटन में 76.24 करोड़ रुपए की राशि सरकार द्वारा प्राप्त की गई। जोकि अनुमानित बजट का मात्र 24 प्रतिशत ही था। रिपोर्ट एवं प्रेस कांफ्रेस दोनों में उल्लेखित किया गया कि यह मात्र नमूना था जो कि लेखा जाँचों से प्राप्त किया गया था। जब राज्य सरकार को सी.ए. जी. (CAG) के द्वारा इसकी सूचना दी गई, तो राज्य सरकार ने उत्तर दिया कि रोशनी अधिनियम के उद्देश्यों के अनुरूप ही कार्य किया जा रहा है। अधिनियम के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं की जा रही है। यदि किसी राज्य अधिकारी ने रोशनी एक्ट के विरुद्ध कार्य किया, तो उसके खिलाफ सख़्त कार्यवाही की जाएगी। लेकिन राज्य के द्वारा किए गए लिखित जवाब का लेखा जाँच (audit) से कोई मेल नहीं खाता था, वरन जाँच प्रक्रिया में प्रत्येक कदम पर राज्य अधिकारियों ने छिपाने/ढंकने (cover up) की कोशिश की।

उपर्युक्त घटनाओं से राज्य की ग़रीब जनता व्यथित थी। भूमि आवंटन घोटाला राष्ट्रहित पर सीधी चोट कर रहा था। राष्ट्रीय सुरक्षा को भी इससे संकट उत्पन्न होने की आशंका सुरक्षा एजेंसियों के द्वारा व्यक्त की गई। क्योंकि अभी तक कई अवैध क़ब्ज़ाधारियों की पहचान की पुष्टि भी नहीं हो पाई थी। राष्ट्रीय पटल पर आने के पूर्व ही प्रोफेसर एस.के. भल्ला ने, जो कि राजकीय डिग्री कॉलेज में धार में प्राचार्य (प्रिंसिपल) थे। 17 अगस्त, 2011 को एक लोकहितवाद (Public Interest Litigation hereafter used as PIL) उच्च न्यायालय जम्मू एंड कश्मीर में संस्थित किया। उन्होंने अपनी याचिका में भूमि आवंटन की अनियमितताओं का उल्लेख किया एवं एक एस.आई.टी. (SIT &The Special Investigation Team -- स्पेशल इन्वेस्टिगेशन टीम) के गठन की माँग की। उन्होंने अपनी याचिका में उदाहरण स्वरूप एक मामले का उदाहरण प्रस्तुत किया। जिला जम्मू की तहसील चकलाल शाह के निवासी तिलकराज एवं हेमराज पुत्र गण करमचंद दो भाई जिनकी 342 कनाल ज़मीन रोशनी एक्ट के प्रावधानों के अनुसार अवैध क़ब्ज़ाधारियों को आवंटित कर दी गई थी। अवैध क़ब्ज़ाधारी जिनका नाम शबनम ताज, नौशीन ताज एवं अर्शी ताज था, जिनके पिताश्री ताज मोहिउद्दीन, जोकि तत्कालीन राज्य सरकार में सिंचाई विभाग में कैबिनेट मंत्री थे। जबकि राजस्व दस्तावेज़ स्पष्ट रूप से उल्लेख करते थे कि उक्त भूमि तिलक राज एवं हेमराज के नाम विधिक रूप से अंकित थी। यह एकमात्र उदाहरण था, इस तरह के बहुत सारे मामले जम्मू क्षेत्र में जाँच का विषय हैं। इस प्रकार कुछ व्यक्तिगत भूमियों का आवंटन एवं विधिक क़ब्ज़ाधारियों का निष्कासन करके अवैध क़ब्ज़ाधारियों को आवंटन करके, स्थापित जनसांख्यिकी (demography) को परिवर्तित करने का कुत्सित प्रयास भी जारी था। जनसामान्य के बीच यह अधिनियम आतताई के रूप में उभर रहा था, क्योंकि समस्त अधिकारी एवं मंत्री गणों ने रोशनी एक्ट का ही सहारा ले रखा था। उपर्युक्त कैबिनेट मंत्री के पुत्रों ने अवैध क़ब्ज़े के बाद उक्त भूमि पर एक बड़ा

फॉर्म हाउस एवं अन्य संरचनाओं का निर्माण कर लिया। याची प्रोफेसर एस.के. भल्ला ने उक्त उद्धरण के सशक्त साक्ष्य के रूप में राजस्व अभिलेखों को उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। जोकि *प्रथम दृष्टया* घोर अन्याय को दर्शित करते हैं, जिसमें रोशनी एक्ट का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

13 मार्च, 2014 को एक और लोकहित याचिका अंकुर शर्मा ने दाख़िल की। इस याचिका में याची ने रोशनी एक्ट एवं समस्त संबंधित नियमों को असंवैधानिक घोषित करने की माँग की। अपनी याचिका में अधिनियम के अंतर्गत किए गए समस्त आवंटन एवं अन्य प्रकार की कार्यवाहियों को भूतलक्षी प्रभाव से अर्थात् प्रारंभ से ही निरस्त करने की अपील की। इस याचिका में आवंटित भूमि का पुनः अधिग्रहण राज्य सरकार द्वारा करने की प्रार्थना की गई एवं फिर से विधिक स्वामित्व स्थापित करने का अनुरोध किया गया।

उपर्युक्त दोनों याचिकाओं की संयुक्त सुनवाई में माननीय उच्च न्यायालय ने कई फील्ड रिपोर्ट एवं राज्य अभिलेखों का निरीक्षण किया, जिसमें प्रत्यक्ष अनियमितताएँ दृष्टिगोचर हुई। किसी जिला प्रशासन ने भी संतोषजनक जवाब प्रस्तुत नहीं किए, वरन् कई मामलों में दबाने की (cover up) पुरज़ोर कोशिश की गई। विशेषकर जम्मू विकास प्राधिकरण एवं राजस्व अधिकारियों ने आवंटन की अनियमितताओं को छिपाने का भरसक प्रयत्न किया। इस बात का संज्ञान विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण) जम्मू ने भी अपने आदेश दिनांक 4 दिसंबर, 2019 में लिया जिससे उच्च न्यायालय भी सहमत हुआ। इस संदर्भ में सतर्कता संगठन (The Vigilance Organization) ने प्रारंभ में छः एफ.आई.आर. (First Information Report) पंजीकृत की, बाद में फिर एंटी करप्शन ब्यूरो (the Anti Corruption Bureau hereafter used as ACB), जो कि पूर्व में सतर्कता संगठन था, ने 17 मामलों को संदर्भित किया जिसमें कि 7 एफ.आई.आर. पुलिस स्टेशन विजिलेंस ऑर्गेनाइजेशन जम्मू ने एवं 10 एफ.आई.आर. विजिलेंस ऑर्गेनाइजेशन श्रीनगर ने पंजीकृत की थी। याची के अधिवक्ताओं ने इसकी विस्तृत जाँच रिपोर्ट उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की। 4 जुलाई, 2019 को एंटी करप्शन ब्यूरो ने क्लोजर रिपोर्ट (Closure Report) विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण) जम्मू के समक्ष प्रस्तुत की। उक्त सभी मामले आपराधिक अभियोज्यता (The Criminal Culpability) का सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अपनी उक्त क्लोजर रिपोर्ट में ए.सी.बी. ने बिग शार्क (बड़ी मछलियों) के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करने में असमर्थता भी व्यक्त की। इसी कारण अपराध की गहन एवं सूक्ष्म पड़ताल करने के बजाए ए.सी.बी. ने भी चुप्पी ही साधना उचित समझा। इसी कारण विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण) जम्मू ने अपने 4 दिसंबर, 2019 के आदेश में एस.एस.पी. (SSP) एसीबी जम्मू को सभी रूसूख़दार व्यक्तियों के विरुद्ध पुनः जाँच करने के सख़्त आदेश दिए क्योंकि इस मामले में मंत्री, विधायक, बड़े-बड़े नौकरशाह, पुलिस अधिकारियों की संलिप्तता *प्रथम दृष्टया* साबित होती थी। इसी कारण याचिकाकर्ताओं की सीबीआई जाँच की माँग को उच्च न्यायालय ने उचित माना।

विवाद का अपूर्ण पटाक्षेप

जम्मू कश्मीर उच्च न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले में जम्मू एवं कश्मीर राज्य भूमि (अधिभोक्ताओं में स्वामित्व का निहितकरण) अधिनियम, 2001 (रोशनी एक्ट को) जो कि समय समय पर संशोधित भी किया जाता रहा है, समस्त संशोधनों के साथ इसे प्रारंभ से ही पूर्ण रूप से असंवैधानिक एवं विधि विरुद्ध माना। यह अधिनियम राज्य के व्यक्तियों में निहित भारतीय संविधान प्रदत्त अनुच्छेद 14 एवं 21 के मूल अधिकारों के विरुद्ध प्रावधानों का उल्लंघन करता है। इसी कारण अधिनियम प्रारंभ से ही शून्य प्रभाव रखता है। राज्य को एवं किसी व्यक्ति को उसके भूमि पर स्थापत्य स्वामित्व से हटाने वाले किसी भी प्रावधान को न्यायिक नहीं ठहराया जा सकता। उच्च न्यायालय ने अतिक्रमणियों एवं राज्य प्राधिकारियों के समस्त कार्यों एवं लोगों (acts and omissions) को गंभीर अपराध की संज्ञा दी एवं उनके विरुद्ध आवश्यक जाँच, अन्वेषण एवं अभियोजन पर बल दिया। रोशनी एक्ट के अंतर्गत की गई, समस्त कार्यवाही पूर्ण रूप से मनमानी, बेइमानीपूर्ण एवं अविधिक थी। उच्च न्यायालय ने याची गणों की माँगों को जायज़ ठहराते हुए, निर्देश दिया कि रोशनी एक्ट के प्रावधानों के अंतर्गत जिन भूमियों का निहितकरण हुआ है, या कि अतिक्रमकारियों को आवंटित किया गया है, उन्हें वापस राज्य में निहित किया जाए एवं जिन प्राइवेट व्यक्तियों को उनके स्वामित्व से अविधिक रूप से वंचित किया गया है, उनके स्वामित्व को पुनः स्थापित किया जाए। रोशनी एक्ट के अंतर्गत 3,48,200 कनाल अनुमानित भूमि उचित मूल्यों पर अंतरित की जानी थी। जो कि राज्य अधिकारियों की साठ-गाँठ की वजह से कृषि भूमि के रूप में 3,20,000 कनाल भूमि निःशुल्क अंतरित कर दी गई। उक्त नुक़सान न केवल लोकहित के विरुद्ध था, वरन् राज्य अधिकारियों की शर्मनाक कार्य पद्धति (MODUS OPERANDI) को भी दर्शाता है। इस अधिनियम के प्रावधानों ने वस्तुतः कितनी क्षति पहुँचाई है, इसका मूल्यांकन तो गरिमापूर्ण जीवन को मानक मान कर करना असंभव होगा। परंतु राष्ट्रहित में रोशनी अधिनियम की असंवैधानिकता के बावजूद आपराधिक अभियोग्यता (Criminal Culpability) का निर्धारण परम आवश्यक है। अन्यथा लोक अधिकारी अपने पद को राजशाही में परिवर्तित करने में देर नहीं लगाएँगे। यह उदाहरण अन्य राज्यों के लिए भी आवश्यक होगा। इसके साथ ही न्यायिक स्वामित्व की स्थापना का कार्यान्वयन भी दुष्कर हो सकता है, परंतु अति आवश्यक होगा। क्योंकि उक्त भूमियों पर आर्थिक रूप से संपन्न अतिक्रमणियों ने बड़े-बड़े भवन एवं संस्थान खड़े कर लिए हैं। सी. बी.आई. के द्वारा यह भी जाँच का विषय है कि जम्मू क्षेत्र की जनसांख्यिकी परिवर्तन का कुत्सित प्रयास किया गया कि नहीं। यदि किया गया है, तो पलायन कर गए विधिक स्वामियों को पुनः स्थापित करने हेतु सुदृढ़ प्रयास किए जाएँ। यदि इस आदेश का उचित क्रियान्वयन नहीं किया गया एवं अन्य राज्यों ने भी इसे उदाहरण ही मान लिया, तो सामान्य जन के पास पूर्ण आंदोलन के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं बचेगा, जो कि भयावह भी हो सकता है एवं शांतिपूर्ण भी।

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो किस प्रकार आपराधिक अभियोज्यता की जाँच करता है एवं उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध यदि राज्य सरकार एवं अन्य प्रतिपक्षीगण उच्चतम न्यायालय जाते हैं, तो उनका क्या रुख़ होगा? यह तो भविष्य के गर्भ में है, परंतु इतना तो स्पष्ट है कि विधायिका द्वारा पास की गई सारी विधियाँ न्यायोचित नहीं होती हैं।

'अंततोगत्वा न्याय की पूर्ण स्थापना ही राज्य की समस्त इकाइयों का ध्येय होना चाहिए'।

❑

संदर्भ

1. Prof. S.K. Bhalla v. State of Jammu and Kashmir, (IA No. 48/2014, PIL No. 19/2011, CM Nos. 4036 & 4065/2020)
2. M, Rahul (14 October, 2020). "Explainer : What's the controversial Roshni Act all about and why has J & K HC ordered a CBI probe into it?". Yahoo News
3. a b Chauhan, Abha (2017-08-28). "7 : Gendering the Landownership Question in Jammu and Kashmir". In Chowdhry, Prem (ed.). Understanding Women's Land Rights : Gender Discrimination in Ownership. SAGE Publishing India. ISBN 978-93-86446-33-6
4. "Guv orders inquiry into Roshni Act irregularities". Tribune India. 14 September, 2019
5. a b Sharma, Arun (2018-12-03). "Explained : J & K Roshni Act : what it aimed to do, what happened until it was repealed". The Indian Express. Retrieved 2020-11-02
6. a b "J&K administration scraps Roshni Act, says government will retrieve land in six months". Scroll.in. 1 November, 2020. Retrieved 2020-11-03
7. a b Sharma, Arun (14 October, 2020). 'Loot to own' : J & K High Court hands Rs 25,000 crore land scam probe to CBI". Indian Express
8. Ashiq, Peerzada (2020-10-31). "J & K government declares Roshni Act 'null and void'". The Hindu. ISSN 0971-751X. Retrieved 2020-11-02
9. "J&K govt declares actions under Roshni Act 'null and void'; what you need to know". Firstpost. 2020-11-02. Retrieved 2020-11-02
10. "J & K admin working on details of beneficiaries of alleged Roshni Act scam". Deccan Herald. 22 October, 2020
11. Oka, Akhil (24 November 2020). "Union Law Minister Alleges Involvement Of Farooq Abdullah In J & K Land Scam, Demands Probe". Republic
12. Bhatt, Sunil (24 November, 2020). "Farooq Abdullah's name surfaces in Roshni land scam, says it's only a ploy to disturb him". India Today
13. Indian Defence Review Volume 18. Lancer International. 2003. p. 13. Retrieved 3 November, 2020
14. "What is J & K's Roshni Act and how it enabled land 'loot' in the name of light". ThePrint. 2020-11-02. Retrieved 2020-11-03
15. Suhail, Peer Ghulam Nabi (2018). Pieces of Earth : The Politics of Land-Grabbing in Kashmir. New Delhi : Oxford University Press

संतोष बंसल

इंटरनेट पर महिलाओं की सुरक्षा का अधिकार

वर्तमान युग में जब सुरक्षित इंटरनेट ही एक परिकल्पना भर है तो इस पर महिलाओं की सुरक्षा अत्यंत गंभीर और चिंतनीय मुद्दा है। अतः इस विषय पर चर्चा से पूर्व हमें पहले आज के समय 'इंटरनेट' और इसके आम जीवन में महत्त्व को समझना होगा, तभी हम इसके संदर्भ में महिलाओं की सुरक्षा के अधिकार की बात रखेंगे। इंटरनेट सेवाओं के बिना आज के जीवन की कल्पना मुमकिन नहीं है। आज बहुत से कारोबार, बहुत सारी सेवाएँ, बहुत सारे लेन-देन और बहुत सारी दिनचर्या इंटरनेट पर आधारित हो चुकी है। इसे बाधित करने का अर्थ है, लोगों को फिर से उसी दौर में पहुँचा देना, जो आज की ज़रूरतों के हिसाब से निरर्थक हो चुका है। बेशक यह आशंका रहती है कि इसका फ़ायदा उठाने की कोशिश असामाजिक तत्त्व और आतंकवादी भी करेंगे, लेकिन पिछले दिनों अदालत ने जिस तरह इंटरनेट को अभिव्यक्ति की आज़ादी का एक अंग ठहराया है, वह स्वागत योग्य है। इस फैसले से यह भी साबित होता है कि इंटरनेट के वैश्विक प्रभाव को कतई नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह 'ग्लोब्लाइजेशन' का दौर है। आज इंटरनेट का इतना विस्तार हो चुका है कि कुछ समय की इसकी रोक से ही करोड़ों रुपए स्वाहा होते हैं। इसका यह आर्थिक पक्ष और आम जन-जीवन में इसकी सहूलियत से अन्य सुविधाओं का रास्ता ही, दूसरे तमाम तर्कों पर भारी पड़ता है। वैसे कोई भी सेवा नागरिकों के फ़ायदे के लिए होती है, किंतु उसका ग़लत इस्तेमाल उस सुविधा पर कई सवाल उठा देता है। ऐसे में जब 10 जनवरी, 2020 को उच्चतम न्यायालय ने इंटरनेट सेवा को मूल अधिकार के नज़रिये से देखकर इसे मौलिक अधिकार का दर्जा दिया है, तो भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में यह फ़ैसला सुनहरे अक्षरों में लिखा जाएगा।

यह निर्णय मान्यता देता है कि इंटरनेट का न सिर्फ़ मोल और महत्त्व है, बल्कि आज की 'डेट' में यह मानव जीवन का केंद्र बिंदु भी है। जैसे ही इंटरनेट सेवा अगर सुरक्षा के लिए भी बाधित होती है तो लोगों के मौलिक अधिकार बाधित होते हैं क्योंकि अभिव्यक्ति की आज़ादी हमें संविधान के अनुच्छेद 19 से हासिल है, जबकि जीवन जीने का मौलिक अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत है। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि इंटरनेट को लेकर हमें दुरुपयोग की आज़ादी मिल गई है। अब भी इसके इस्तेमाल पर प्रतिबंध लग सकता है, अगर भारत की संप्रभुता, अखंडता ख़तरे में हो या पड़ोसी देशों के साथ रिश्ते बिगड़ने की आशंका हो अथवा किसी की

सुरक्षा पर कोई आँच आए। इसके साथ सामाजिक मर्यादा व नैतिकता की रक्षा करनी हो तो क़ानून व व्यवस्था बिगड़ने के अंदेशे से सरकार इंटरनेट पर रोक लगा सकती है। ऐसा संविधान के अनुच्छेद 19(2) के तहत किया जा सकता है, जैसाकि पिछले दिनों श्रीनगर में किया गया। लेकिन सरकार को इसकी वजह बतानी होगी क्योंकि उसकी चुनौती इन्हीं आशंकाओं के बीच लोगों की सुरक्षा और साथ ही इंटरनेट सेवा देने के अधिकार देने की है। चूँकि महिलाओं की एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार्यता, उनके व्यक्तित्व विकास एवं देश की तरक्की में आधी आबादी के समुचित योगदान के लिए आवश्यक है तो सरकार को उनके लिए साइबर सुरक्षा को भी सर्वोपरि रखना होगा क्योंकि इसमें फैलाए जा रहे धोखों से अर्थात् ब्लैक मेलिंग से स्त्रियों की भौतिक सुरक्षा देश की क़ानून और व्यवस्था का मुख्य दायित्व है। हालाँकि सरकार 'डाटा प्राइवेसी एक्ट' प्रस्तावित करके इंटरनेट पर अपराधों को रोकने की दिशा में काम कर रही है और अगर इसे संसद में मंजूरी मिलती है तो इंटरनेट उपभोक्ताओं को काफ़ी राहत मिल सकती है।

अब चूँकि महिलाएँ दुनिया की आधी आबादी हैं एवं प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भागीदारी अहम और महत्त्वपूर्ण है तो इंटरनेट का मसला उनके लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यधपि सुरक्षा के प्रश्न पर उनका पक्ष ज़्यादा ज़रूरी है क्योंकि आज महिलाएँ या लड़कियाँ ही सबसे अधिक असुरक्षित हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इंटरनेट जहाँ जानकारियों का खज़ाना माना जाता है, वहीं यह झूठ और फ़रेब का बड़ा मंच भी बन गया है एवं यह लोगों को भ्रमित करने, बदनाम करने और ख़ास मकसद से 'ब्लैकमेल' करने का हथियार बन रहा है। इंटरनेट में ख़ासकर सोशल मीडिया ने झूठ को दिखाने और सुनाने की ऐसी शैली विकसित की है कि अक्सर लोग उस पर विश्वास कर लेते हैं, धोखे का अहसास तो बहुत बाद में होता है। शायद ही ऐसा कोई हो, जिसने इंटरनेट पर धोखा न खाया हो। कोई भी इससे बच नहीं पाता और बचा कैसे जाए? किसी को नहीं पता। वैसे फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सअप, इंस्टाग्राम, आदि सोशल मीडिया के तमाम मंच अभिव्यक्ति के कारगर हथियार है, ''ऐसे में इंटरनेट ही एकमात्र ऐसा ज़रिया है, जो किसी भी ओहदे या स्थान पर हो, तुरंत एक अंतर्राष्ट्रीय लेखक, प्रसारणकर्ता (ब्रॉडकास्टर) और हस्तांतरित करने वाला (ट्रांसमीटर) बना देता है, यानी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए इंटरनेट से बेहतर कोई दूसरा माध्यम आज हमारे पास नहीं है।'' (पवन दुग्गल, साइबर क़ानून विशेषज्ञ, लेख : 'मूल अधिकार को विस्तार देता फ़ैसला', हिंदुस्तान समाचार-पत्र, 11 जनवरी, 2020)

चूँकि भारतीय आकाश में सोशल मीडिया का जितना तेज़ी से विस्तार हुआ, इसका दुरुपयोग भी जनसंख्या के उसी अनुपात में बढ़ा। इस खुले सामाजिक माध्यम पर गाली-गलौज, आराजक टिप्पणियाँ और मनमानी बयानबाज़ी इतनी अधिक होने लगी है कि इसके अनर्गल इस्तेमाल से सामाजिक ताना-बाना तो प्रभावित होता ही है, इससे व्यक्तिगत दुश्मनी की घटनाएँ भी बहुत बढ़ रही हैं। इसके अलावा 'फ़ोटोशॉप' पर की गई कलाकारी किसी को भी भ्रमित करने और दोषारोपण में कारगर सिद्ध हो रही है, जिससे आपसी रिश्तों और संबंधों में भी ज़हर और कड़ुवाहट घुल रहा है। दूसरे 'ट्रोलिंग' में केवल सेलिब्रिटीज़ और नेताओं को ही निशाना नहीं

बनाया जाता, बल्कि पत्रकारों, लेखकों को भी बख़्शा नहीं जाता है। फिर 'स्मार्ट स्क्रीन' का प्रयोग करने वाली आम महिलाएँ और युवा लड़कियाँ इसकी कितनी शिकार होती होंगी? इसका सहज अंदाज़ा लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए कोई लड़की विश्वास करके अपना पासवर्ड किसी मित्र से शेयर करे और वह बाद में उसे ब्लैकमेल करते हुए उसकी निजी तस्वीरें और वीडियो इंटरनेट पर 'अपलोड' करे। अथवा उसकी कुछ तस्वीरों को 'फ़ोटोशॉप' कर अश्लील वेबसाइट्स पर 'लोड' कर दे, तब उस लड़की के लिए कितनी बड़ी मुसीबत खड़ी हो जाती है? यह भुक्तभोगी लड़कियाँ या उनके अभिभावक ही जानते हैं। इसके अलावा आम महिलाओं को भी मैसेंजर पर 'चैटिंग' और 'कमैंट्स' के माध्यम से 'टीज' किया जाता है, यह भी किसी से छिपा नहीं है। ऐसे में इस मुद्दे की गंभीरता और भयावहता 'विक्टिम' के साथ-साथ उसके परिवार के लिए भी चिंता और तनाव का कारण बन जाती है।

लेकिन मुद्दा सिर्फ़ यह नहीं है कि लड़की ने अपने दोस्त पर विश्वास किया और उसने विश्वासघात करते हुए मोबाइल फ़ोन या सोशल मीडिया अकाउंट को हैक किया। मसला यह है कि सोशल मीडिया के दौर में किसी की निजता कब-कैसे संकट में आ जाए? कोई नहीं जानता? दरअसल तकनीक ने अपराध को भी आसान बना दिया है और युवाओं के लिए कई मामलों में अपराध भी खेल सरीखा हो गया है। आकउंट हैकिंग से लेकर साइबर बुलिंग तक कई अपराध युवा लड़के-लडकियाँ धड़ल्ले से कर रहे हैं। दूसरे, नई पीढ़ी जो इन आधुनिक उपकरणों को इस्तेमाल करने में माहिर है, वे नैतिकता, मर्यादा, विश्वास जैसे परंपरागत मूल्यों को ज़्यादा स्वीकार नहीं करते। आधुनिकता की तेज़ रफ्तार दौड़ के बीच उन्हें सफलता या कामयाबी पाने के लिए 'बॉउंडेशंस' तोड़ने में कोई परहेज़ नहीं होता, चाहे वह अपराध की श्रेणी में ही क्यों न हो? वैसे तो किसी भी कार्य के लिए शिक्षा या डिग्री की आवश्यकता होती है, या फिर एक निश्चित उम्र के बाद लाइसेंस की ज़रूरत होती है जिससे वे उस कार्य को भली-भाँति जानते हों एवं कुशलतापूर्वक कर सकें तथा किसी हादसे का शिकार न हों एवं कोई दुर्घटना न कर बैठें। लेकिन सूचनाओं के मामले में हम अशिक्षित ही है। इसीलिए इस समस्या के दो पहलू हैं। ''एक क़ानूनी और एक नैतिक। फ़ोटो लीक करना, ईमेल हैक करना -- जैसे तमाम मामले हमारे सामने रहते हैं। सोशल मीडिया पर सक्रियता को लेकर कोई ट्रेनिंग बच्चों के पास नहीं है, अलबत्ता उनके हाथ में स्मार्ट फ़ोन है। क़ानून की उन्हें जानकारी नहीं है। युवाओं को पहले सजग करना होगा, और फिर उनकी ज़िम्मेदारी तय करनी होगी।'' (बहुत कुछ हैक करती है यह पीढ़ी, लेख का एक अंश, कादंबनी पत्रिका, सितंबर 2019)

वास्तव में इंटरनेट के सुपर हाई वे पर गाड़ी चलाने के लिए किसी लाइसेंस, किसी ट्रेनिंग, किसी कोर्स की आवश्यकता नहीं होती। वरिष्ठ पत्रकार प्रभात रंजन कहते हैं, ''पूरा-का-पूरा एक मायावी संसार युवा अपनी हथेली में लेकर चल रहे हैं, ग़लतियाँ तो होंगी ही।'' यद्यपि ज़ुबानी तौर पर महिला सुरक्षा का मुद्दा सर्वोपरि है, किंतु दुर्घटना होने पर उन्हीं को दोषी ठहराते हुए उन पर पाबंदी का शिकंजा कसने लगता है। हमारे समाज में सुरक्षा के नाम पर लड़कियों

के घर से निकलने पर रोक लगा दी जाती है या उनकी पढ़ाई बंद करवा दी जाती है। बदनामी के भय से ऐसी बातों को दबा दिया जाता है और उनकी शिकायत भी पुलिस या इससे संबंधित अधिकारी को भी नहीं की जाती। इस प्रकार महिलाओं को आगे बढ़ने में, मुक़ाम हासिल करने में असुरक्षा का हवाला देते हुए अनेक बाधाएँ खड़ी मिलती हैं। इसीलिए सही समय और सही तरीक़े से किसी आपत्तिजनक बर्ताव और व्यवहार की शुरुआत में ही प्रतिक्रिया देना सुरक्षा को बढ़ाता है। चुप रहकर बर्दाश्त करने की बजाय यदि महिलाएँ खुलकर प्रतिरोध करती हैं तो न केवल अपने प्रति होने वाले अपराध को रोकती हैं, बल्कि उनके आत्म-विश्वास में भी वृद्धि होती है। बढ़ती तकनीक के साथ साइबर सुरक्षा एक चुनौती के रूप में हमारे सामने खड़ी है, ऐसे में हमें इस दिशा में काम करने तथा जागरूकता की ज़रूरत है। लेकिन अभी सोशल मीडिया के प्रयोग की तुलना में सुरक्षा के उपाय की मौखिक जानकारी बहुत कम है और महिलाएँ साइबर उत्पीड़न का आसानी से शिकार हो रही हैं। ऐसे में इन ज़रूरी सुरक्षा उपायों पर ध्यान देना चाहिए, जिन पर नियंत्रण स्वयं हमारे हाथ में ही हैं --

1. सोशल मीडिया अकाउंट और मेल आई.डी. आदि स्वयं बनाएँ।
2. पासवर्ड कठिन बनाए और किसी से शेयर न करें।
3. साइबर स्पेस में उन्हें ही मित्र बनाएँ, जिन्हे जानते हों।
4. व्यक्तिगत और अनावश्यक कोई भी जानकारी न दें।
5. अनावश्यक किसी भी लिंक को क्लिक न करें।
6. अपना फ़ोन या लैपटॉप किसी को देने में सावधानी बरतें।
7. प्रत्येक सॉफ्टवेयर को अपडेट करते रहें और अपना पासवर्ड बदलते रहें।
8. समस्या होने पर कहाँ शिकायत करनी है, इसकी जानकारी अवश्य रखें।
9. हेल्पलाइन नंबर, साइबर सेल और पुलिस की ट्वीटर सेवा आदि के बारे में जानकारी रखें।
10. अपने अभिभावकों से किसी भी तरह की कोई बात नहीं छुपाएँ; और उनसे अपना संपर्क बनाए रखें।

इन सबके अतिरिक्त अभिभावकों को भी अपने बच्चों को साइबर ख़तरों (बहलाना, ट्रोलिंग या ब्लैकमेल) के बारे में अवगत कराना चाहिए। हमारे शिक्षण संस्थानों में इंटरनेट के बारे में तो पढ़ाया जाता है; पर उसकी सुरक्षा को लेकर ज़्यादा नहीं सिखाया जाता। इसीलिए उन्हें बच्चों को एंटी वॉयरस के बारे में बताने के साथ, उनकी ऑनलाइन गतिविधियों पर भी नज़र रखनी चाहिए तथा घर के 'वेबकैम' को कवर करके रखना चाहिए तथा लड़कियों को सलाह दें कि किसी भी अजनबी की 'फ्रेंड रिक्वेस्ट' को बिना छान-बीन किए स्वीकार न करे और परेशान करने वाले व्यक्ति को तुरंत 'ब्लॉक' करने के बाद उसे 'लॉगआउट' करें। वैसे साइबर विशेषज्ञ भी आगाह करते रहे हैं कि अपनों पोस्ट या अकाउंट पर आप जो शेयर करते हैं, उसके लिए आप ही ज़िम्मेदार हैं। इसीलिए कुछ भी साझा करने से पहले ठहरकर सोचना ज़रूरी है, क्योंकि सोशल मीडिया पर तस्वीरों या वीडियो के जरिए ब्लैकमेल करने की घटनाएँ

बढ़ती ही जा रही हैं। किसी मामले में पीड़ित से पैसे की माँग की जाती है, तो कहीं यौन शोषण की घटनाएँ सामने आ रही हैं। यह बात भी स्पष्ट है कि साइबर अपराधियों के निशाने पर किशोर और युवा लड़कियाँ ही अधिक हैं, लेकिन लंपट लोग प्रौढ़ महिलाओं को भी नहीं बख़्शते और अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आते। एक सर्वे के अनुसार, पिछले वर्ष देश में महिलाओं के अपमान से संबंधी 686 मामले दर्ज किए गए और 571 केस ऑनलाइन ब्लैकमेल से संबंधित थे। ऐसे में अगर कोई फर्जी अकाउंट बनाकर ब्लैकमेल करता है या आपत्तिजनक पोस्ट करने के बाद डिलीट करके बचने की कोशिश करता है, तो भी वह पकड़ा जा सकता है। ऐसे मामलों में शिकायत करने के लिए क़ानून के कई रास्ते हैं --

1. सीधे 100 नंबर पर शिकायत दर्ज करने के अलावा आप ऑनलाइन भी शिकायत कर सकते हैं।
2. ऑनलाइन शिकायत के लिए 'cybercrime.gov.in' पोर्टल पर अपनी शिकायत दर्ज कराएँ।
3. इस प्रक्रिया के तहत अपने मोबाइल नंबर को पंजीकृत कराना ज़रूरी होता है। मोबाइल पर आए ओ.टी.पी. से अपनी शिकायत दर्ज करा सकते हैं।
4. आई.टी। एक्ट की धारा 66 व 67 की विभिन्न श्रेणियों के तहत आरोपी के ख़िलाफ़ मामला दर्ज किया जा सकता है।
5. पहली बार दोषी पाए जाने पर पाँच साल की सज़ा व दस लाख तक का जुर्माना है।
6. दूसरी बार जुर्म करने पर दस लाख तक जुर्माने के साथ सात साल की सज़ा का प्रावधान है।

स्त्रियों द्वारा उपर्युक्त सावधानियों के साथ सरकार की ओर से क्या क़दम उठाए गए हैं? अगर इस विषय पर हम देखें तो पाएँगे कि पिछले वर्ष 28 अगस्त, 2019 को नए दिल्ली में 'नई राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा रणनीति की ओर' (Towards New National Cyber Security Strategy) विषय पर 12वें भारतीय सुरक्षा सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन के दौरान उभरते साइबर ख़तरों, घटनाओं, चुनौतियों एवं प्रतिक्रया जैसे कई विषयों पर चर्चा की गई। साथ ही इस विषय पर ध्यान केंद्रित किया गया कि 'डिजीटल संस्कृति' एक पीढ़ी से, दूसरी पीढ़ी में परिवर्तित हो रही है और साइबर प्रौद्योगिकी में बड़ी तेज़ी आई है। लेकिन वह एक वरदान होने के साथ बड़ा ख़तरा भी बन गई है क्योंकि साइबर अपराध में इंटरनेट नेटवर्क या कंप्यूटर का प्रयोग एक साधन अथवा लक्ष्य के रूप में किया जाता है। ऐसे अपराधों में हैकिंग, चाइल्ड पोर्नोग्राफी, साइबर स्टॉकिंग, सॉफ्टवेयर पाइरेसी, क्रेडिट कार्ड फ्रॉड, फिशिंग, आदि को शामिल किया जाता है। वास्तव में इन सब अपराधों के चंगुल में तो 'वर्किंग वीमेन' के साथ, बहुत-सी आम घरेलू औरतें भी आसानी से फँस जाती हैं और वे आर्थिक हानि एवं नुक़सान उठाने के साथ, शारीरिक और मानसिक शोषण की भी शिकार हो जाती हैं। साइबर अपराध विशेषज्ञ श्री मुकेश चौधरी के अनुसार, ''साल 2014 के बाद से ओ.टी.पी। आधारित डेबिट-क्रेडिट कार्ड या ई-वॉलेट से जुड़े अपराध बढ़ गए हैं। इसे रोकना इसलिए भी मुश्किल है, क्योंकि जिस इंटरनेट सेवा से हम आर्थिक लेन-देन करते हैं, वही सुरक्षित नहीं है।'' (नज़रिया, जहाँ क़दम-क़दम पर है ख़तरों की भरमार,

हिंदुस्तान अख़बार, जनवरी 2020) चूँकि भारत इंटरनेट का तीसरा सबसे बड़ा उपयोगकर्ता है और हाल के वर्षों में साइबर अपराध कई गुना बढ़ गए हैं, इसीलिए साइबर सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए सरकार की ओर से निम्नलिखित क़दम उठाए गए हैं --

1. भारत में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000, पारित किया गया, जिसके प्रावधानों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता के प्रावधान सम्मिलित रूप से साइबर अपराधों से निपटने के लिए पर्याप्त हैं।
2. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000, की धाराएँ 43, 43A, 66, 66B, 66C, 66D, 66E, 66F, 67, 67A, 67B, 70, 72, 72A or 74 हैकिंग और साइबर अपराधों से संबंधित है।
3. सरकार ने साइबर सुरक्षा से संबंधित फ्रेमवर्क का अनुमोदन किया है और इसके लिए राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् सचिवालय को नोडल एजेंसी बनाया है।
4. राष्ट्रीय विशिष्ट अवसंरचना और विशिष्ट क्षेत्रों में साइबर सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी अनुसंधान संगठन को नोडल एजेंसी बनाया गया है।
5. इसके अंतर्गत दो वर्ष से लेकर उम्र क़ैद तथा दंड अथवा जुर्माने का भी प्रावधान है। सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति, 2013' जारी की गई है, जिसके तहत सरकार ने अति संवेदनशील सूचनाओं के संरक्षण के लिए 'राष्ट्रीय अति संवेदनशील सूचना अवसंरचना संरक्षण केंद्र (National Critical Information Infrastructure Protection Centre NCIIPC) का गठन किया।
6. सरकार द्वारा 'कंप्यूटर इमरजेंसी रिस्पांस टीम (CERT–In)' की स्थापना की गई, जो कंप्यूटर सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर की मॉडल एजेंसी है।
7. विभिन्न स्तरों पर सूचना के क्षेत्र में मानव संसाधन विकसित करने के उद्देश्य से सरकार ने 'सूचना सुरक्षा शिक्षा और जागरूकता' (Information Security Education and Awareness – ISEA) परियोजना प्रारंभ की है।
8. भारत सूचना साझा करने और साइबर सुरक्षा के संदर्भ में सर्वोत्तम कार्य-प्रणाली अपनाने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और चीन जैसे देशों के साथ समन्वय कर रहा है।
9. अंतर एजेंसी समन्वय के लिए 'भारतीय साइबर अपराध समन्वय केंद्र' (Indian Cyber Crime Co-ordination Centre-14C) की स्थापना की गई है।
10. देश में साइबर अपराधों से समन्वित और प्रभावी तरीक़े से निपटने के लिए 'साइबर स्वच्छता केंद्र' भी स्थापित किया गया है। यह इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (Ministry of Electronics and Information Technology Ministry) के तहत भारत सरकार की डिजिटल इंडिया मुहीम का एक हिस्सा है।

इस प्रकार, सरकार द्वारा क़ानूनी सुरक्षा के लिए क़दम तो उठाए गए हैं किंतु फिर भी बच्चियाँ और स्त्रियाँ इसके बुरे प्रभाव से बच नहीं पा रही हैं और इसकी आदत या लत की शिकार होकर कई शारीरिक-मानसिक बीमारियों से भी ग्रस्त हो रहीं है। हर समय स्मार्ट फ़ोन की स्क्रीन पर नज़र गड़ाए रखना और लिखे अथवा कमेंट के लिए लालायित रहना रुग्णता

को जन्म दे रहा है। बच्चियों का तो विकास ही रुक जाता है और पढ़ाई तथा 'रिजल्ट' पर भी असर पड़ता है। यह भी तो एक तरह से उनके भावी जीवन की असुरक्षा ही है। कई मामलों में तो इंटरनेट पर आसानी से उपलब्ध ख़तरनाक 'खेलों' के जाल में बच्चे-बड़े स्वयं उलझ जाते हैं, जिससे बच्चों में अवसाद या आत्म-हत्या की प्रवृति भी बढ़ी है। पिछले दिनों तो आए दिन ख़बरों में यह आता था कि सोशल मीडिया के इन विश्व-विख्यात कथित 'गेम्स' के चक्कर में फलाने बच्चे या किशोर ने आत्म-हत्या कर ली। ऐसे में इंटरनेट का अधिक और ग़लत इस्तेमाल शारीरिक, मानसिक दुष्प्रभाव डालने के साथ साथ जानलेवा भी साबित हो रहा है। दूसरे, अगर हम महिलाओं की सुरक्षा की बात करते हैं तो पिछले दिनों देश में 'लीचिंग' यानी भीड़ द्वारा पीट-पीट कर मार देने की और दंगे करवाने की घटनाएँ जगह-जगह हुई हैं और इसके लिए यही कहा गया है कि सोशल मीडिया का इस्तेमाल अफ़वाहें फैलाने के लिए किया गया। अफ़वाहें चाहे तस्करी की हों या गोमांस की, सांप्रदायिक हिंसा की या बच्चे चुराने की, इन सबके बीच महिलाओं का तबका तो प्रभावित होता ही है। ऐसे में किसी भी तरह के अपराध को रोकने के लिए पाबंदियों की भूमिका हमेशा संदिग्ध होती है और भारत जैसे खुले समाज में पाबंदियाँ कभी कामयाब नहीं होती। वैसे भी पाबंदी कभी समाधान नहीं होती और इसका असर उलटी दिशा में होने का ख़तरा बहुत बढ़ जाता है।

अंततः साइबर सुरक्षा के लिए सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर तो बहुत से प्रयासों की आवशयकता है ही, किंतु साथ में ख़ुद की भी सजगता और सचेतना की ज़रूरत है। अभी हाल में साइबर सुरक्षा के लिए हमारे देश में सरकार की नीतियों का ज़िक्र करते हुए आई. टी. के जानकार पवन दुग्गल कहते हैं, ''हैकिंग समेत तमाम साइबर अपराधों में क़ानून लचर है। आप किसी का अकाउंट हैक करते हैं, तो भले तीन साल की सज़ा का प्रावधान हो, लेकिन अपराध जमानती है। किसी को क़ानून का कोई डर नहीं। इन अपराधों में सज़ा की दर 0.3 फीसदी के आस-पास है।'' वैसे दुनियाभर के मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री इस पहेली का हल ढूँढ़ रहे हैं कि 'इंटरनेट' पर झूठ-फरेब का इतना बड़ा कारख़ाना आया कहाँ से और इससे निपटने या मुक्ति का क्या तरीक़ा है? यह हमेशा ही होता है कि सुविधाएँ हमेशा अपने साथ समस्याएँ भी लाती ही हैं। सुविधा वाले पक्ष को तो सभी सहज ही अपना लेते हैं, किंतु समस्या वाला सिरदर्द सर चढ़कर बोलता है और इसके लिए सूचनाओं के मामले में प्रशिक्षित न होना यानि अशिक्षित होना ही असुरक्षा का कारण है। इंटरनेट की निरक्षरता पर बोलते हुए शीर्ष वैज्ञानिक नील टॉयसन के अनुसार, ''लोगों में वैज्ञानिक चेतना विकसित करके ही इस समस्या को समाप्त किया जा सकता है। लोगों को यह सिखाना होगा कि चीज़ें कैसे काम करती हैं और लोग अपने आप झूठ पकड़ना सीख लेंगे।'' इस प्रकार अमेरिका के प्रसिद्ध अंतरिक्ष वैज्ञानिक नील डीग्रासे टॉयसन का यह कथन उचित है कि यह समस्या इसीलिए बड़ी है कि इंटरनेट पर सूचनाओं का बहुत बड़ा ढेर है और इन का इस्तेमाल किस तरह करना है? यह किसी को पढ़ाया नहीं जाता।

❑

प्रो. अशोक कुमार अवस्थी

लखनऊ विश्वविद्यालय के विधि संकाय की पहचान इनोवेशन

लखनऊ विश्वविद्यालय का विधि संकाय 1921 में तीन पार्ट टाइम शिक्षकों के साथ स्थापित हुआ था। तत्समय विधि शिक्षण वरिष्ठ वकीलों द्वारा सांयकालीन कक्षाओं के माध्यम से हुआ करता था। जगमोहन नाथ चक संकाय के पहले अधिष्ठाता नियुक्त हुए, लेकिन संकाय को शैक्षणिक एवं अनुसंधान संस्थान के रूप में निर्मित और विकसित करने का श्रेय प्रोफेसर आर. यू. सिंह को है जिन्होंने इस कठिन दौर में भी वैज्ञानिक पद्धति से विधि पठन-पाठन और अनुसंधान की नींव रखी और शीघ्र ही यह संकाय विधि शिक्षा के क्षेत्र में भारत के अग्रणी विश्वविद्यालयों में अपना स्थान बनाने में सफल हुआ।

स्वतंत्रता के समय भारत में विधि शिक्षण को एक अकादमिक अध्ययन-शास्त्र के रूप में विकसित करना दुःसाध्य कार्य था, लेकिन लखनऊ विश्वविद्यालय के विधि संकाय में इस भागीरथ कार्य को महान् पथ-प्रदर्शक प्रो. आर.यू. सिंह ने पाठ्यक्रम, अध्यापन, संगठन और अंतःक्रियाओं की शृंखला के नवोन्मेष से कुशलतापूर्वक संचालित और संपादित किया। प्रो. सिंह स्वयं हार्वर्ड यूनिवर्सिटी से डॉक्टरेट थे। यहाँ हार्वर्ड और येल विश्वविद्यालय की तर्ज़ पर नियुक्तियाँ प्रारंभ हुई। डॉ. वी.एन. शुक्ल, जो लखनऊ विश्वविद्यालय के विधि संकाय के पहले एल.एल.एम. थे, ने लंदन यूनिवर्सिटी से प्रत्यायोजित विधायन पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा, जो कैंब्रिज यूनिवर्सिटी से पी-एचडी थे, ने शिक्षक के रूप में कैरियर की शुरुआत यहीं से की थी। डॉ. जी.एस. शर्मा, डॉ. बी. के. गुप्ता और डॉ. आर.बी. तिवारी अमेरिका के येल यूनिवर्सिटी से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त थे। डॉ. सिंह ने नियम बना रखा था कि लेक्चरर से रीडर पर प्रोन्नति के लिए डॉक्टरेट की डिग्री होना अनिवार्य था। इसी कारण से विधि संकाय में पोस्ट डॉक्टोरल प्रोग्राम शुरू किया गया और 1952 में पोस्ट डॉक्टोरल हासिल करने वाले पहले व्यक्ति डॉ. ए.टी. मार्कोस थे, जो तुरंत ही इंडियन लॉ इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली के निदेशक बन गए थे। प्रो. आर.यू. सिंह ने नेपाल के संविधान निर्माण में महती भूमिका निभाई थी और कालांतर में दिल्ली यूनिवर्सिटी में विधि संकाय स्थापित करने चले गए।

उनके बाद डॉ. वी.एन. शुक्ल डीन नियुक्त हुए। तब तक लखनऊ यूनिवर्सिटी का विधि संकाय भारत में प्रतिष्ठित हो चुका था। यहाँ का पुस्तकालय तो दक्षिण-पूर्व एशिया का सबसे बड़ा समृद्ध पुस्तकालय माना जाता था जिसमें ऑक्सफोर्ड तथा कैंब्रिज विश्वविद्यालयों के चार्टर समेत

तत्कालीन प्रासंगिक के आंग्ल-अमेरिकी क़ानून तथा उनकी टीकाएँ उपलब्ध थीं। संकाय से लखनऊ लॉ जर्नल् प्रकाशित किया जाता था जिसमें प्रकाशित लेख न्यायालय के निर्णयों में उद्धृत किए जाते थे। डॉ. मार्कोस ने इसी की तर्ज़ पर इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट का जर्नल् प्रारंभ किया।

एक अत्यंत उल्लखनीय तथ्य यह है कि विधि संकाय प्रति वर्ष एक 'मूट कोर्ट' आयोजित करता था, जो लखनऊ की एक महत्त्वपूर्ण घटना होती थी। इसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निर्णीत किसी प्रसिद्ध मुकदमे का नाट्य रूपांतरण प्रस्तुत किया जाता था, जिसके पात्र संकाय के छात्र-छात्राएँ होते थे। इसमें जज के रूप में हाई कोर्ट के किसी कार्यरत न्यायाधीश को आमंत्रित किया जाता था और ट्रायल की पूरी प्रक्रिया का पालन होता था। इससे जहाँ छात्रों को कोर्ट-क्राफ्ट के बारे में प्रैक्टिकल ज्ञान होता था, वहीं जनपदवासियों को क़ानून की बारीकियों को समझने का अवसर मिलता था। लखनऊवासी बड़ी बेसब्री से इंतज़ार करते थे। अब 'मूट कोर्ट' का स्वरूप बदल गया है।

अपने गौरवशाली इतिहास में विधि संकाय ने विभिन्न विषयों में विचार संगोष्ठियाँ, व्याख्यान, मूट कोर्ट, निबंध प्रतियोगिता तथा विधिक सहायता शिवरों का आयोजन किया है। सन 2003 में प्रतिलिप्याधिकार क़ानून पर भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के सहयोग से राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई थी। सन् 2008 से प्रति वर्ष 'डॉ. वी.एन. शुक्ल स्मृति व्याख्यान' आयोजित किया जाता रहा है जिसमें संविधान के ज्वलंत विषय पर ख्याति प्राप्त विद्वान् को आमंत्रित किया जाता है।

इस कड़ी में गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. आर.के. मिश्र, कॉपीराइट बोर्ड के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा, एन.यू.जे.एस. के कुलपति प्रो. एम.पी. सिंह, लॉ कमीशन के सदस्य प्रो. एम.सी. शर्मा, भारत के मुख्य न्यायाधीश डॉ. ए.एस. आनंद (जो यहीं के छात्र रहे हैं) जैसे लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् व न्यायविद् पधार चुके हैं। डॉ. आर.यू. सिंह की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए उनके नाम से प्रति वर्ष 'मूट कोर्ट प्रतियोगिता' आयोजित की जाती है जिसमें सारे देश से टीमें भाग लेती हैं।

विधि संकाय ने राजनीति तथा विधि के क्षेत्र में न समाप्त होने वाली शृंखला में न जाने कितने ख्याति प्राप्त नाम दिए हैं जो राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्री, सांसद, विधायक, न्यायाधीश, तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों में कुलपति, आचार्य तथा निदेशक आदि के पद संभाल चुके हैं या पदासीन हैं।

डॉ. वी.एन. शुक्ल द्वारा लिखित भारतीय संविधान पर लिखी टीका अपने क्षेत्र में पहिली थी तथा प्रायः सत्तर वर्षों के बाद अपना स्थान बनाए हुए हैं। डॉ. अवतार सिंह ने तो विधि पुस्तक लेखन क्षेत्र में अतुलनीय कीर्तिमान स्थापित किया है। कई अन्य अध्यापकों ने भी उल्लेखनीय योगदान दिया है, जिन्हें छात्र बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं।

सन् 1995 में विश्वविद्यालय के द्वितीय परिसर में विधि पंचवर्षीय प्रोग्राम प्रारंभ किया गया था और शनैःशनैः पूरा संकाय यहीं स्थानांतरित हो गया। यहाँ शिक्षक आवास भी पर्याप्त हैं। वर्तमान में एल.एल.बी. त्रिवर्षीय, एल.एल.बी. पंचवर्षीय, एल.एल.एम., पी-एच.डी. और

एल.एल.डी. के डिग्री कार्यक्रम तथा कई डिप्लोमा पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं। नए परिसर में फोरेंसिक लैब भी है, जो अपराध विधि के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी है। अभी हाल में 'इंडिया टुडे' की रैंकिंग में विधि संकाय अपना स्थान बनाने में सफल रहा है।

❑

कविता

भारत का संविधान

विधि का सबसे बड़ा प्रतिमान
भारत का है लिखित संविधान
जन की आशा का अभिमान
भारतीय संस्कृति का वरदान।।

पवित्रताओं से भी पवित्र
बाइबिल, गीता और कुरान
मानव अधिकारों का दस्तावेज
गणतंत्र का आधार महान।।

हर भारतीय की प्रतिबद्धता
जीवन में भर देता स्वच्छता
बदलाव का वह सजग प्रहरी
मिटाता दिल से दिल की दूरी।।

हर मूक की सबल आवाज
हर पंगु की बनता परवाज
शासन के जो तीन सौपान
उसकी वाणी करे बखान।।

हर धर्म का वह रखवाला
हर कर्म का दिग्दर्शक तारा
राष्ट्र एकता का पक्का मीत
व्यक्ति से व्यक्ति की प्रीत

अपनी कमियों खुद मिटा कर
सबका स्वयं बन जाता मीत
न वह युद्ध किसे से छेड़े
शांति का उपासक अनन्य।।

हमारे संविधान को नमन
तेरा मेरा सबका नमन
नमन, नमन और नमन।।

❑

साक्षी वर्मा

महिला सुरक्षा एवं जागरूकता

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। ''अर्थात् जिस कुल में नारियों की पूजा अथवा सत्कार होता है, उस कुल में दिव्यगुण दिव्य भोग और उत्तम संतान होती है। वही जिस कुल में नारियों की पूजा नहीं होती, वहाँ उनकी सब क्रिया निष्फल हो जाती हैं।''

यह एक कटु सत्य है कि किसी भी समाज की कल्पना महिलाओं के बिना नहीं की जा सकती अर्थात् महिलाओं के बिना मनुष्य जीवन अपरिहार्य सा प्रतीत होता है। एक महिला अपने संपूर्ण जीवन में सामाजिक स्तर पर कई महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाती है, चाहे वह ममता से भरी एक माँ हो, या बेटी, बहू या सास तो कभी धर्मपत्नी के रूप में अपनी ज़िम्मेदारियों को बख़ूबी से निभाती है। वहीं दूसरी ओर, किसी उच्च पद पर आसीन होकर एक शिक्षक तो कभी एक चिकित्सक के रूप में जनकल्याण कार्यों में सहायक सिद्ध होती है। ब्रिघम यंग के द्वारा एक प्रसिद्ध कहावत हैं, कि ''अगर आप एक पुरुष को शिक्षित कर रहे हैं, तो आप सिर्फ़ एक पुरुष को शिक्षित करते हैं। वहीं यदि आप एक महिला को शिक्षित करते हैं, तो आप आने वाली एक पीढ़ी को शिक्षित करते हैं।'' एक महिला शिक्षा हासिल करती है तो वह अपने साथ-साथ पूरे समाज को बदलने की ताक़त रखती है। ऐसी सशक्त स्त्री एक ओर जहाँ देश के विकास के लिए कई कीर्तिमान स्थापित करती है, तो वहीं दूसरी ओर देश का नाम रोशन करती है। किसी भी देश के सामाजिक विकास का अनुमान उस देश की महिलाओं की स्थिति से लगाया जा सकता है अर्थात् किसी समाज की वास्तविक स्थिति का अंदाज़ा, उस समाज में मौजूद महिलाओं की सुरक्षा से आँका जा सकता है। यदि कोई समाज इस प्रक्रिया में असफल साबित होता है तो वह समाज परिपूर्णता से कोसों दूर प्रतीत होता है। अतः ऐसे समाज को सभ्य समाज की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

आज की नारी किसी भी रूप में पुरुष से पीछे नहीं है, अब चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या शिक्षा का, चिकित्सा का, कला का या अन्य कोई क्षेत्र हो। इसके साथ-साथ सामाजिक क्षेत्रों में भी बढ़-चढ़कर आगे आती हैं। लेकिन वर्तमान युग में अपनी विशेष सहभागिता के बावजूद भी, ये महिलाएँ आज समाज में सुरक्षित नहीं हैं। वर्तमान युग में महिलाओं की यह असुरक्षा ही हमारी नाकामी को दर्शाती हैं। महिलाओं की सुरक्षा को लेकर कई नियम क़ानून भी बनाएँ जाते हैं। जिनमें से कुछ इस प्रकार है :

1. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन-उत्पीड़न एवं रोकथाम, निषेध, और निवारण अधिनियम, 2013
2. घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2005
3. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005
4. बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006
5. सड़कों पर उत्पीड़न, आई.पी.सी. की धारा 294 और 509
6. दहेज प्रतिषेध अधिनियम आदि।

उपरोक्त अधिनियमों के अतिरिक्त कई अन्य अधिनियम, इसी दिशा की ओर कार्य करते हैं। वहीं सरकार के द्वारा निर्मित कई ऐसी मोबाइल एप्स हैं, जिनको विशेषकर महिलाओं की सुरक्षा को ध्यान में रखकर बनाया गया है। किंतु फिर भी समाज में महिलाएँ स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं। यह असुरक्षा का भाव एक ओर जहाँ शासनतंत्र की कमज़ोर शासनप्रणाली की ओर इंगित करता है, वहीं दूसरी ओर समाज की महिलाओं के प्रति अस्थायी जागरूक स्वभाव को भी दर्शाता है।

समाज में अक्सर महिलाओं की सुरक्षा को लेकर कई वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ एवं संगोष्ठी कार्यक्रम किए जाते हैं जिसमें महिलाओं की सुरक्षा को लेकर कई लंबे-चौड़े व्याख्यान भी दिए जाते हैं। क्या इन व्याख्यानों का वास्तविकता से सच में कोई नाता होता है? यह कार्यक्रम केवल महिलाओं की समाज में उपलब्धि को तो सुनिश्चित कर सकते हैं किंतु समाज में उनके प्रति जागरूकता का कार्य करने में, उतने प्रबल सिद्ध नहीं होते हैं। समाज में महिलाओं के प्रति जागरूकता का यह प्रबल प्रभाव केवल तभी सिद्ध होगा जब प्रत्येक व्यक्ति इसके प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को समझेगा। इस प्रकिया में प्रत्येक व्यक्ति को अपने से जुड़े लोगों से कुछ इस प्रकार संवाद स्थापित करना होगा कि उन्हें इस बात का बोध हो सके कि समाज में पुरुषों एवं महिलाओं का दर्जा समान हैं और नारी एक शक्ति एवं जननी हैं जो कि स्वयं योग्य है, न कि उपभोग की वस्तु। इस संवाद की शुरुआत हमें सर्वप्रथम अपने घर से करनी होगी।

आज हम भूमंडलीयकरण के दौर में हैं, जहाँ हर तरफ़ केवल विकास के प्रतिमान दिखाई देते हैं। विकास को हम लिंग भेद के आधार पर नहीं आँक सकते, क्योंकि यह भागीदारी का परिणाम है। विकास के इस युग में महिलाओं के प्रति अपनी सोच का विकास करने, अर्थात् सोच को विकसित करने का समय आ गया है जिसके पश्चात् हम एक सभ्य समाज का निर्माण कर पाएँगे। जहाँ हर महिला स्वयं को सुरक्षित तथा पुरुषों के समान स्वयं को सशक्त एवं प्रबल महसूस करेंगी। सारांश में यहाँ यह कहना उचित होगा कि ''अब समाज को करना होगा जागृत, ताकि महिलाएँ हो सके सुरक्षित।''

❑

डॉ. श्रीमती राजेश जैन

भारत में अनेकता में एकता-अतुल्य भारत के संदर्भ में

भारत भिन्न-भिन्न ख़ुशबुओं वाले रंग-बिरंगे फूलों का एक गुलदस्ता है यही नहीं मेरा भारत महान है, हम सबकी शान है। हर भारतवासी के दिलों की धड़कन है। भारत केवल एक भू-भाग का नाम नहीं है बल्कि इस भू-भाग में बसे लोगों, उसकी संस्कृति, उसकी सभ्यता और उसके रीति-रिवाज़ों तथा इसके अमूल्य और अमर इतिहास का नाम है। सोने की चिड़िया कहा जाने वाला भारत एक तप स्थली है, इसका हर कण-कण पावन एवं पूज्यनीय है। एक समृद्ध देश के रूप में भारत की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है।[1]

यदि हम भारत के भौगोलिक रूप की बात करें तो यह एक विशाल देश है, इसके उत्तर में पर्वतराज हिमालय है, तो दूसरी ओर दक्षिण में अथाह सागर लहरा रहा है, पश्चिम में रेगिस्तान का मरुस्थल है, तो पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। भारत में जगह-जगह पर्वत मालाएँ है। हरे-भरे जंगल, रमणीय और दर्शनीय स्थल, सुंदर समुद्र तट और हमारे चारों धाम आदि इसकी शोभा बढ़ा रहे है। उत्तर की तरफ़ जहाँ एक ओर स्वर्ग के रूप में कश्मीर है, तो दूसरी ओर दक्षिण में सागर की सुंदरता है, यहाँ अनगिनत सरिता बहती है, जो अपने स्वरूप द्वारा इसको अनोखा और दिव्य स्वरूप प्रदान करती है। ऊँची-ऊँची पर्वत की चोटी भारत की शान में चार चाँद लगाती है, इसी कारण भारत विश्व में एक अनोखा स्थान रखता है।[2]

भारत एक ऐसा देश है जहाँ पर लोग अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। वे भारत देश से बहुत प्रेम करते हैं। हमारे देश में अनेक तरह के लोग रहते हैं, फिर भी वह मिल-जुलकर रहते हैं। देश में जब भी कोई विपत्ति आती है, तो हम सब भारतवासी मिलकर उसका सामना करते है, वास्तव में पूरा देश अनेकता में भी एकता का ज्ञान कराता है, अतः ऐसी स्थिति में हमें यह जानना आवश्यक है कि भारत को अनेकता में एकता का देश क्यों कहा जाता है?[3]

हमारे भारत की सभ्यता संसार में सबसे प्राचीनतम है इसकी पावन भूमि ने अनेकों सभ्यता और संस्कृतियों को जन्म दिया है। इसने केवल एक संस्कृति का पोषण नहीं किया बल्कि इसने अनेक संस्कृतियों को अपने आँचल की छाया में पाल-पोस कर महान् संस्कृतियों के रूप में खड़ा किया है। हमारे भारत में अनेक विभिन्नताएँ होते हुए भी एकता के दर्शन होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष का स्वरूप जितना भव्य और विशाल है, चौड़ी छाती है

जो आततायियों का काल है, दुर्गा और चंडी का रूप है तो इसका मन भी उतना ही उन्नत सहनशील, प्रेम से परिपूर्ण और उदार है।

भारत में अनेक धर्म और जातियों के लोग रहते हैं फिर भी इन धर्मों के होते हुए भारतवासी एक है। हमारे देश में सबसे अधिक हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, फारसी, ईसाई आदि धर्म मानने वाले लोग रहते हैं जिनमें अनेक तरह के भेद-भाव होते हुए भी सभी धर्मों के लोग एक ही समाज में मिल-जुल कर रहते हैं। यही नहीं, देश में अनेक जाति के लोग भी रहते हैं जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, यादव, कुशवाहा, रघुवंशी, बनिया, श्रीवास्तव आदि प्रमुख हैं। फिर भी वे सभी एक ही समाज में रहते हैं उनमें कोई भेद-भाव नहीं है।[4]

भारत में जहाँ विभिन्न धर्म एवं जातियों के लोग रहते हैं वहाँ दूसरी तरफ़ भारतवासी तरह-तरह की भाषाएँ बोलते हैं। वैसे तो हमारे देश की राष्ट्रीय भाषा हिंदी है और सबसे ज़्यादा लोग हिंदी ही बोलते हैं। इसके अतिरिक्त, भारत में कई तरह की भाषाएँ बोली जाती हैं जैसे -- गुजराती, पंजाबी, तमिल, मलयालम, उर्दू, मराठी आदि ये तरह-तरह की भाषाएँ एक-दूसरे को दिलों से बाँधे हुए हैं। इन भाषाओं में एक सुखद मिठास भरी है, और सब एक-दूसरे की भाषा को महत्त्व देते हुए उनका सम्मान करते हैं। अतः भारत में अनगिनत भाषाएँ बोली जाती हैं। इसीलिए भारत को अनेक भाषाओं का संगम कहा जाता है जो अनेकता में एकता का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

भारत में जहाँ अनेक धर्म, जाति और भाषा के लोग रहते हैं वहाँ वे अलग-अलग त्यौहार भी मनाते हैं जैसे -- दीपावली, होली, रक्षाबंधन, क्रिसमस, ईद आदि। लेकिन ऐसा भी होता है कि अलग-अलग धर्म के लोग अलग-अलग त्यौहारों को भी मनाते हुए देखे जाते हैं जो अनेकता में एकता का प्रतीक है।[5]

भारत में अनेक तरह की वेशभूषा पहनी जाती है। पुराने लोग कुर्ता-पजामा, धोती कुर्ता पहनते हैं और महिलाएँ साड़ी पहनती हैं और लड़के पेंट-शर्ट, लड़कियाँ सलवार-कुर्ता पहनते हैं और विभिन्न प्रांतों में जैसे महाराष्ट्र में महिलाएँ मराठी साड़ी पहनती हैं तो गुजरात में गुजराती। अलग-अलग वेशभूषा होते हुए भी सभी एक-दूसरे के पहनावे का सम्मान करते हैं।

हमारे देश में खान-पान के तौर-तरीक़े भी अलग-अलग है कोई पंजाबी, तो कोई गुजराती, तो कोई साउथ इंडियन खाना पसंद करते हैं अतः भारत में तरह-तरह के व्यंजन बनाए जाते हैं देश में बहुत सारी भिन्नताएँ होते हुए भी भारत देश एक है। भारत में अलग-अलग धर्म के लोग होते हुए भी लोगों की मान्यताओं के अनुसार ईश्वर की पूजा अर्चना की जाती है जैसे हिंदुओं के भगवान् शिव-शंकर-पार्वती, विष्णु, बह्मा, गणेश है तो मुस्लिमों के भगवान् को अल्लाह कहते हैं। अलग-अलग धर्मों के भगवान् को अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है लेकिन वास्तव में भगवान् वह परम शक्ति एक ही है; बस केवल उनके नाम ही अलग-अलग हैं, अच्छाई और सत्य का नाम ही भगवान् है। जहाँ पर सत्य और निष्ठा और अच्छे कर्म होते हैं वहाँ पर भगवान विराजमान होते हैं। भगवान् अर्चना-पूजा के अलग-अलग स्थान (मंदिर, मस्जिद,

गिरजाघर आदि) हैं लेकिन भगवान् तो मूलतः एक ही हैं जिसे आदि शक्ति (supreme power) कहा जाता है।[6]

वास्तव में, हम देखें तो हमारे भारत देश में धर्म, जाति, संस्कृति, देश के प्रांत, वेशभूषा, त्यौहारों आदि में अनेकता है लेकिन फिर भी अनेकता में भी एकता है सभी जाति, धर्म, वेशभूषा वाले लोग मिल-जुलकर रहते हैं, साथ में मिलकर खुशियाँ मनाते हैं, समाज में मिलकर एक साथ रहते हैं, लोग अलग-अलग राज्य के निवासी होते हैं लेकिन वह हमेशा राष्ट्र हित के बारे में सोचते हैं, वह भारत भूमि के बारे में सोचते हैं उनके लिए भारत माता ही सबसे बढ़कर है इसलिए हम कह सकते हैं कि देश में अनेकता में भी एकता के दर्शन होते हैं। भारत में अनेकता में एकता को बनाए रखने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि भारतवासियों में प्रेम, सौहार्द, सद्भावना एवं उच्च मानसिकता का वातावरण निर्मित किया जाए।

❑

संदर्भ

1. डॉ. आर.एन. त्रिवेदी, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2003 पृष्ठ 159
2. क्रॉनिकल पत्रिका, शिवलोक हाउस, नई दिल्ली, दिसंबर, 2008, पृष्ठ 68
3. डॉ. वी.वी. तायल, भारतीय शासन एवं राजनीति, राधा प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृष्ठ 212
4. प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, मई, 2010, पृष्ठ 615
5. दैनिक भास्कर, भोपाल, 23 अप्रैल 2016, पृष्ठ 4
6. विधि भारती पत्रिका, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 63

पुष्पा सिन्हा

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' -- की वर्तमान वास्तविकता

'समकालीन नारी है दोयम दर्जे की नागरिक, उस असहाय को यातनाएँ चुप रह कर सहन करनी पड़ती।'

हमारे भारतीय संविधान में लिंग में समानता का अधिकार दिया गया है अर्थात् लिंग के आधार पर नर और नारी को समान दर्जा दिया गया है। उसमें भेदभाव करना वर्जित है, अपराध है। वैदिक काल में नारी को विधाता की सुंदर कृति माना गया था। नारी शरीर से कोमल, हृदय से संवेदनशील होती है। प्राचीनकाल में भारतीय नारी को उच्च स्थान प्राप्त था। वैदिक समाज में नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे और धार्मिक एवं सामाजिक कृत्य उसके बिना अपूर्ण माने जाते थे। मैत्रेयी, शकुंतला, सीता, सावित्री, दयमंती, अनसूया आदि के नाम आज भी नारी के गौरव गरिमा के प्रतीक माने जाते हैं। तभी तो उस काल में नारी के लिए 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का निवास होता है।

''वैदिक काल में नर व नारी थे समान, तभी तो परिवार और समाज था खुशहाल।''

परंतु धीरे-धीरे नारी की स्थिति में ह्रास होता गया। वस्तुतः रामायण तथा महाभारत काल के बाद भारतीय नारी की स्थिति में निम्नता आती गई। मध्यकालीन समाज में तो नारी शोषित होती चली गई। इसका बड़ा कारण था भारतवर्ष पर कई आक्रमण हुए और कई सभ्यताएँ पनपीं। साथ ही मुगलों का शासनकाल आया, तब नारियाँ असुरक्षित महसूस करने लगीं। समाज में पुरुषों का वर्चस्व बढ़ता गया और नारियाँ पुरुषों के हाथों का खिलौना बनती गईं, जिसके कारण कई कुरीतियाँ पनप गईं।

स्वतंत्र-चेतन नारी का अस्तित्व घर की चार दीवारी में बंद होकर कुंठित होने लगा और ऐसे में नारी भी नारी की दुश्मन बनने लगीं। पग-पग पर उनका अपमान होने लगा, जिसमें पुरुषों के साथ नारियों ने भी आग में घी डालने का काम किया। बालिका विवाह, दहेज प्रथा, अशिक्षा और बेमेल विवाह होने के साथ-साथ स्त्री का शोषण भी होने लगा।

मध्यकाल से जो नारी का पतन होने लगा, वह आज भी जारी है। आज भी असंख्य भारतीय नारियाँ उपेक्षा, तिरस्कार, हीनता, हिंसा और शोषण का शिकार हो रही हैं। आज भी घर में

पुत्र-जन्म होने पर बधाइयाँ दी जाती हैं और बेटी के जन्म पर चुपचाप सभी का मुँह बंद रहता है।

लेकिन अब समय अत्याधुनिक युग का आ गया है, जब नारी की स्थिति धीरे-धीरे बदल रही है। ख़ासकर शहरों में खुद नारियाँ ही अब समाज में बदलाव का संवाहक बन रही हैं। समाज में नारियों का पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, आर्थिक शोषण, घरेलू हिंसा तथा विधवाओं के प्रति नज़रिया बदल रहा है। महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिए जा रहे हैं। लड़कों की भाँति ही लड़कियों को शिक्षा दी जा रही है। समाज में विधवा विवाह का चलन हो रहा है तथा व्यवसाय के सभी क्षेत्रों में भारतीय नारी पुरुष के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर चल रही हैं। कई क्षेत्रों में तो वे पुरुषों से भी आगे हैं।

आज की भारतीय नारी गृहणी के साथ-साथ समस्त प्रोफ़ेशनल कार्यों जैसे -- डॉक्टर, कलेक्टर, अध्यापिका, पुलिस, अफ़सर, अभिनेत्री, परिचारिका, वैज्ञानिक और यहाँ तक कि सेना में भी अपनी सेवाएँ दे रही हैं। सार्वजनिक जीवन का ऐसा कौन-सा क्षेत्र नहीं है, जिसमें भारतीय नारी पुरुष के समकक्ष उतनी ही दक्षता से कार्यरत नहीं है। लेकिन हर क्षेत्र के काम-काज में महिलाओं की गिनती निराशाजनक है। अतः देश और समाज को उचित रूप से गतिमान बनाने के लिए स्त्री-पुरुष की बराबर की भागीदारी बहुत ज़रूरी है।

आज हमारे देश की महिलाएँ हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर चल रही हैं। साथ ही अपने हौसलों से चुनौतियों को मात देते हुए खेल, सेना तथा पुरुष-वर्चस्व वाले क्षेत्रों में भी अपनी कामयाबी का परचम लहरा रही हैं।

नारियों के चहुँमुखी विकास में सबसे ज़रूरी तत्त्व पोषण, शिक्षण व आर्थिक स्वतंत्रता है। यह बात भी ग़ौरतलब है कि महिलाओं को पुरुषों के साथ स्पर्धा करने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि अपनी नारी शक्ति का इस्तेमाल करते हुए पुरुषों के साथ सहयोग का क्षेत्र बढ़ा कर परिवार, समाज और देश-दुनिया को विकसित करें। हमें ऐसा विकास चाहिए जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का अर्थ छिपा हो।

यह तभी संभव हो सकता है जब भारत की नारियाँ जीवन के उत्तरदायित्व के साथ-साथ अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक हों। नारी में मानवीय गुण जैसे दया, ममता एवं संवेदनशीलता कूट-कूट कर भरा होता है। लेकिन इन गुणों के साथ वे शिक्षित होकर बुद्धिमान व विवेकी बनें, तब परिवार और समाज का चहुँदिशी विकास होगा। साथ ही नारियाँ भी समाज के द्वारा थोपी हुई हिंसा का शिकार नहीं होंगी और जागरूक होकर स्वतंत्र अर्थपूर्ण जीवन जी सकेंगी। वैसे तो नारी के क़दम अब आगे बढ़ चुके हैं लेकिन समाज में उनका प्रतिशत अभी कम है। गाँवों, देहातों व पिछड़े इलाकों में भी नारी में चेतना व जागरूकता की अलख को जगाया जा रहा है। तब ऐसे में नारी पुरुषों व समाज द्वारा शोषित न होकर खुद आत्मनिर्भर बनेंगी और स्त्रियों को हर क्षेत्र में बढ़ावा देने के लिए क़ानून और सरकार उनका सहयोग देगा। लेकिन सबसे अहम बात यह है कि समाज में नारियों के प्रति नज़रिया बदलना होगा।

अब भारत में वह समय दूर नहीं जब स्त्रियाँ जागरूक बनेंगी और समाज-देशहित में काम करते हुए शांत व संतुष्ट जीवन जी सकेंगी।

महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकार समय-समय पर क़ानून बनाकर उनके हितों की रक्षा करती रहती है। लेकिन सिर्फ़ क़ानून बनाना ही काफ़ी नहीं है, क्योंकि क़ानूनी दाँव-पेंच पेचिदा और ख़र्चीला होता है। साथ ही यह क़ानूनी बात निम्न वर्ग की महिलाओं के पहुँच से बाहर की बात है। तब ऐसे हालात में महिलाओं में जागरूकता व आगे बढ़ने की लालसा उचित क़दम होगा। जागरूकता से विवेक जागता है और लालसा से हाथ व क़दम आगे बढ़ते हैं। ऐसे में ख़ुद महिलाएँ जाग जाएँगी, जिससे वे अपने तथा परिवार की स्वामिनी बन जाएँगी। साथ ही प्रत्येक नारी अपनी नारी शक्ति का उपयोग कर बुद्धि से परिश्रम करते हुए अपने परिवार और साथ ही देश का भला कर सकेंगी।

'नारियाँ हैं पुरुषों की माता, पत्नी, बहन व बेटियाँ तब ऐसे में स्वतंत्र नारी ही देगी उनको ख़ुशियाँ।'

❑

ग्रेजुएटी से जुर्माना किराया (penal rent) वसूली का प्रश्न

उच्चतम न्यायालय ने स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया बनाम राघबेंद्र सिंह मामले में (2020 एस.एस.सी. ऑनलाइन 11063 दिनांक 15.12.2020) अपने फैसले में कहा है कि कर्मचारी की ग्रेच्युटी से जुर्माना किराया वसूल किया जा सकता है। यदि कोई कर्मचारी अपनी सेवा निवृत्ति के बाद निर्धारित समय के बाद भी सरकारी आवास खाली नहीं करता तो उस पर जुर्माना किराया लगना आरंभ हो जाता है। यदि कर्मचारी उसका भुगतान नहीं करता तो सरकार उसकी ग्रेच्युटी की राशि रोक सकती है या उसे ज़ब्त कर सकती है। उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश संजय के. कोल की एक तीन सदस्यीय पीठ ने यह निर्णय देते हुए कहा कि यदि कोई कर्मचारी सेवा निवृत्ति के बाद निर्धारित समय के बाद सरकारी आवास पर कब्जा किए रखता है तो उसको देय राशि में से उस पर लगने वाला जुर्माना किराया वसूल किया जा सकता है। इस खंड पीठ में न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी और हरीश केश भी शामिल थे।

इस फैसले में यह भी कहा गया कि इस संबंध में वर्ष 2017 के राम नरेश सिंह के फैसले को इस फैसले का आधार नहीं बनाया जा सकता क्योंकि वह फैसला केवल एक आदेश था।

❑

डॉ. साधना गुप्ता

भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में नारी स्वातंत्र्य की अवधारणा : वैदिक से रामायण काल

ज्ञान राशि के संचित कोष को संस्कृति कहा जाता है। भारतीय संस्कृति वेद (ज्ञान) पर आधारित है जिसमें अग्र पूजा की अधिकारिणी रही है -- नारी। इस दृष्टि से देखें तो सांस्कृतिक दृष्टि से नारी शक्ति के सम्मान में भारत देश अग्रणी रहा है। हरिश्चंद्र के संग तारा, राम के संग सीता, कृष्ण के संग राधा-रूक्मिणी, शिव संग पार्वती इत्यादि देवियों के रूप में मातृशक्ति की उपासना के माध्यम से महिला सम्मान ही नहीं वरन् उसकी आराधना उपासना की परंपरा भी रही है। वस्तुतः ईश ने नर-नारी दोनों को समान रूप से जन्म दिया है पर पितृ सत्तात्मक समाज ने दोनों के पालन-पोषण में विभेद कर नारी की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया। सभ्यता के विकास के साथ-साथ पुरुष मन में उपजी कुछ बातों यथा -- बालिका कें ससुराल चले जाने, दहेज प्रथा, नारी की शारीरिक शुचिता के कारण मानसिकता में परिवर्तन हुआ। परिणाम स्वरूप जैसे ही कन्या बड़ी होने लगी परिवार द्वारा उसे लड़की होने का अहसास करवा दोयम दर्जे का जीवन जीने पर विवश किया गया। यह व्यवहार किसी काल खंड तक सीमित रहा हो, ऐसा नहीं है। अतः हमें युगे-युगे भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में नारी स्वातंत्र्य का क्रमिक अध्ययन काल खंड के कटघरे में करना होगा।

वैदिककाल में नारी स्वातंत्र्य : वैदिककालीन समाज में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार व सम्मान प्राप्त थे। डॉ. रामगोपाल चतुर्वेदी के मतानुसार, "वैदिक समाज कर्त्तव्यनिष्ठ समाज था। समाज का मौलिक आधार कर्म था। समाज का प्रत्येक व्यक्ति कर्त्तव्यपरायण, संयमी, आत्म-निर्भर और स्वानुशासित था। स्वयं के कर्त्तव्य से ही गौरवान्वित नागरिक कर्मशील रह कर स्वयं समाज व्यवस्था का एक सुदृढ़ स्तंभ था।" कर्म के इस सनातन अनुष्ठान में ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा और विमर्श के लिए न अवसर था न अवकाश। प्रत्येक धार्मिक कार्यों में स्त्रियों की उपस्थिति अर्निवार्य थी।[1] पुत्र के समान पुत्री के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती थी पर कामना अधिकांशतः पुत्र की ही की जाती थी। शिक्षा, धर्म, दर्शन, कला और सामाजिक जागरण की दृष्टि से उसका वर्चस्व था जो इंगित करता है कि नारी पुरुष की सहगामिनी थी, वंदनीय, पूज्यनीय और सम्मानीय भाव से देखी जाती थी। इसीलिए तो उसके लिए सम्मानजनक वक्तव्य दिए गए हैं जैसे :- परिवार के भरण पोषण का दायित्व होने के कारण 'भार्या', प्रजा उत्पत्ति में सहयोग के कारण

'जाया', दो कुलों का हित करने के कारण 'दुहिता'। यज्ञादि अनुष्ठान में उसे सर्वोत्तम स्थान प्राप्त था। वह कहीं प्रकृति थी तो कही प्रज्ञा, उषा, चेतना, ऊर्जा, समष्टि, व्यष्टि, श्री, कला और वाणी। ऋग्वेद में उसे गृह-स्वामिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वे घर की साम्राज्ञी मानी जाती थी। वे वेदाध्ययन एवं काव्य रचना करती थी। आत्मोन्नति के लिए पूर्णतः स्वतंत्र और सबल थी। पति के संग समर भूमि में भी जाती थी। अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा विदुषी और वेदज्ञ थी। वे सप्त ऋषियों में एक मानी गई है। अगस्त्य ऋषि के पुरोहित खेल ऋषि की पत्नी विश्वपला अपने पति के साथ युद्ध भूमि में लड़ने गई थी। अथर्व वेदानुसार कन्या किशोरावस्था में शिक्षा ग्रहण करती थीं और शिक्षा के आधार पर ही विवाह के योग्य मानी जाती थी। शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरुकुल जाना पड़ता था। ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। सह शिक्षा का प्रचलन था।[2] यज्ञ व वैदिक प्रार्थनाओं को करने की आवश्यक शर्त उपनयन संस्कार थी। अतः यजुर्वेद के अनुसार बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था।[3] शिक्षा प्राप्त करने वाली नारियाँ दो प्रकार की -- **1. साध्योवधु-नियमित अवधि तक शिक्षा प्राप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती थी। 2. ब्रह्मवादिनी -- आजन्म शिक्षा प्राप्त करती थी। सर्वोच्य शिक्षा 'ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का भी अधिकार था।'** विशिष्ठ सूत्रानुसार पिता से सहस्त्र गुना प्रतिष्ठित पद माता का होना प्राचीन भारत में स्त्रियों की उच्च स्थिति का स्पष्ट प्रमाण है। वे स्वयंवरा थी।[4] अतः पुरुषों से एक क़दम आगे थी। उपनिषद् काल में भी नारी स्वयंवरा व अध्ययन शीला के रूप में देखी गई है। वह उपेक्षित नहीं थी। मंत्र दृष्टा के रूप में घोषा, लोपामुद्रा, सूर्या, आत्रेयी, सावित्री, अदिति, दाक्षायनी, विश्वतारा, सरस्वती, सर्पराज्ञी, आपाला इत्यादि उल्लेखनीय हैं। वैवाहिक बंधन में वर-वधू केवल तन से नहीं वरन् मन से बँधते थे। उस समय की दांपत्य भावना की मनोहर झाँकी मिलती है। अथर्ववेदानुसार वैदिक समाज में विधवा पुनर्विवाह प्रचलित था। वह किसी भी व्यक्ति से विवाह कर सकती थी और नियोग प्रथा को सामाजिक मान्यता अधिक थी।[5] सती प्रथा नहीं थी। उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बाधित करने वाले कोई बंध नहीं थे।

स्मृति काल : वैदिक काल में नारी स्वतंत्र थी परंतु वेदों के उत्तरकाल में कुछ लोगों द्वारा स्त्रियों का विरोध प्रारम्भ हुआ। पुराण, स्मृति तथा आगे चलकर महाभारत में भी स्त्रियों के लिए विरोधाभासी वक्तव्य -- कहीं बंधनकारी नियमों का उल्लेख तो कहीं प्रंशसा के प्रसंग मिलते हैं। मुनस्मृति में अनेक स्थानों पर स्त्रियों को प्रसन्न रखने के निर्देश दिए गए हैं -- ''जिस परिवार में स्त्रियाँ दुःखी होती है वह परिवार विनष्ट हो जाता है। जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं वहीं प्रफुल्लता रहती है, परिवार की वृद्धि होती है।[6] वे स्त्रियों को महिमान्वित करने लिए यहाँ तक कहते हैं -- जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ इसके विपरीत होता है उस परिवार में सभी क्रियाएँ निष्फल होती हैं।[7]

परंतु उत्तर वैदिक काल में कर्मकांडों की जटिलता ने स्त्रियों की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों पर अनेक प्रतिबंध भी लगाए।[7] वस्तुतः स्त्रियों के क़ानूनी, व्यावहारिक अधिकार सीमित हो गए। उन्हें चल-अचल संपत्ति की स्वामिनी होने का अधिकार नहीं था।

उनके द्वारा अर्जित धन पिता, पति या पुत्र को मिलता था।[9] पुत्री जन्म पर पुत्र के समान स्वागत नहीं होता था। यद्यपि ज्ञानार्जन में रुकावट नहीं थी परंतु उन्हें वेद पढ़ने व मंत्रोच्चार के उपयुक्त नहीं समझा जाता था।[10] अतः उनका उपनयन संस्कार बंद हो गया और आत्मोन्नति के द्वार बंद हो गए। फिर भी लोग विदुषी कन्या की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना तक करते थे। उत्तर वैदिक काल के प्रारंभ में विवाह युवावस्था में (लगभग 16 वर्ष की आयु) होता था, किंतु बाल विवाह के उदाहरण भी मिलते हैं। पराशर गृहसूत्रानुसार -- ''विवाह के बाद पति-पत्नी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से एक इकाई बन जाते थे। जीवन के प्रत्येक कार्य में एक दूसरे को पूर्ण सहयोग देते थे।[11] पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। वह पत्नी व माता के रूप में प्रतिष्ठित थी। विशेष परिस्थिति-पति की मृत्यु, बीमारी, विदेश जाने पर एक निश्चित समयावधि तक प्रतीक्षा के बाद पुनर्विवाह का अधिकार था।[12] विधवा स्त्री को आदर के साथ देखा जाता था। मंगलकार्यों में भागीदारी एवं अपनी संपत्ति पर अधिकार था। सती प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। इस तरह उन्हें आंशिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। परंतु प्रकृति ने उसकी रचना और पुरुष प्रवृत्ति कुछ इस प्रकार की बनाई है कि पुरुष की पशुवृत्ति से उसकी अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए स्मृतियों में स्त्री को बाल, युवा व वृद्धावस्था में क्रमशः पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में रखने की बात कही और उसके मानसिक, आत्मिक साहित्यिक, विकास के द्वारों पर ताले लगा दिए गए, तब बाल विवाह और सती प्रथा का भी प्रचलन हो गया। एक व्यक्ति के रूप में उसकी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई थी।[13] वैदिक युग में नारी की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध नहीं था परंतु धीरे-धीरे इस स्वतंत्रता का इतना ह्रास हुआ कि व्यास स्मृति ने उसे रानी के पद से उतार कर एक दम दासी बना दिया।[14] स्मृतिकाल में उसका जीवन पति की इच्छा पर निर्भर रहता था परंतु धार्मिक अनुष्ठान में पति संग उसकी उपस्थिति आवश्यक थी। डॉ. काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में बताया है कि ''वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में स्त्रियों के पक्ष का ओजस्वी भाषा में समर्थन किया है और बहुत कुछ कह डाला है। उनके मत में स्त्रियों पर धर्म और अर्थ आश्रित है... सच बताओं स्त्रियों में कौन-से दोष हैं जो तुम लोगों में नहीं पाए जाते, वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक गुणों से संपन्न होती है।'' प्रायः सभी विद्वानों का मानना है कि मनु स्त्री की स्वतंत्रता के विरोधी नहीं थे। वे तत्कालीन परिस्थितियों के कारण नारी की स्वच्छंद जीवन पद्धत्ति नहीं चाहते थे। उसे सुरक्षित और सम्मानित रूप में देखना चाहते थे।[15] पर मेरा मत है मनु नारी की स्वतंत्र सत्ता को, स्वतंत्रता को सुरक्षा के नाम पर बंधक बनाना चाहते थे, स्वच्छंदता को नहीं, जिसमें वे सफल भी हुए। ऐसा करके उन्होंने पुरुष की स्वच्छंदता को सीमा हीन विस्तार दे दिया। इसके स्थान पर यदि वे नैतिक रूप से पुरुष द्वारा स्वच्छंदता को छोड़ने एवं स्वतंत्रता तक सीमित रखने की बात करते तो नारी पर बंधन लगाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, न समाज का आधा अंग पराधीन जीवन जीने को बाध्य होता। मूल तथ्य और समस्या की जड़ यही है कि पुरुष अपनी स्वछंदता को नहीं त्यागना चाहता। पुरुष की यह स्वच्छंदता उसे नारी के प्रति वासनात्मक व्यवहार के लिए उत्तेजित कर पैशाचिक आचरण के लिए उकसाती है। उस समय पुरुष व पागल पशु में कोई विभेद नहीं रह जाता है। नारी को

देवी मानने वाला पुरुष नारी देह को देव मन्दिर की तरह पवित्र क्यों नहीं मान पाता? काश! मनु यह समझ पाते कि प्रकृति ने पुरुष को शारीरिक शक्ति अधिक दी है वहीं नारी का मानसिक दृढ़ता प्रदान की है। जिस दिन वह अपनी इस मानसिक दृढ़ता का पूर्ण उपयोग कर शारीरिक रूप से सबल बन जाएगी उस दिन प्रजा उत्पत्ति बंद हो सृष्टि का विकास थम जाएगा।

रामायण काल : रामायण काल में जन्म के समय पुत्री का पुत्र के समान स्वागत नहीं होता था। परंतु पालन-पोषण पुत्र की तरह ही होता था। प्रत्येक गर्भधारण पर पुंसवन संस्कार और बच्चे के जन्म के तुरंत बाद जात कर्म संस्कार पुत्र-पुत्री दोनों का समान रूप से होता था। तत्कालीन नारियाँ शिक्षित थी अतः उपनयन संस्कार भी होता होगा। कैकयी राजनीति ही नहीं, युद्ध कौशल में भी प्रवीण थी। दशरथ के साथ रण क्षेत्र में गई थी। वर चुनने का अधिकार था। पुरुषों में बहुपत्नी प्रथा के चलते सपत्नी को सहन करना मज़बूरी थी। पति की सेवा और मर्यादा पालन उनका प्रमुख कर्त्तव्य था। पर्दा प्रथा नहीं थी परंतु राजपरिवार की प्रतिष्ठा हेतु राजपरिवार की महिलाएँ सामान्य जनों के समक्ष नहीं आती थी। तभी तो वन जाती हुई सीता के लिए उक्ति है -- जिस सीता को पहले आकाश में विचरने वाले प्राणी भी नहीं देख सकते थे, उन्हें आज राजमार्ग पर सामान्य लोग भी देख रहे हैं।'' स्त्रियों को पति के संग व स्वतंत्र रूप से भी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार था। सती प्रथा का अस्तित्व नहीं था किंतु बिना अपराध मात्र संदेह पर उसे त्याग दिया जाता था। इसके उदाहरण सीता और अहिल्या है। इस तरह सतीत्व नारी के लिए आवश्यक गुण था। नारियों की सार्थकता 'रतिपुत्रफलदारा' में निहित थी। वस्तुतः स्मृतिकालीन पराधीनता कम नहीं हुई थी। सतीत्व भंग जिसमें स्त्री की सहमति नहीं हो, पुरुष की पैशाचिकता एक मात्र कारण हो, या फिर ऐसा होने का मात्र संदेह हो और नारी का त्याग कर देना, नारी को समाज ही एक इकाई तो कदापि नहीं दर्शाता। रामायण में अग्नि परीक्षा देने के पश्चात् भी सीता पर संदेह करना, वनवास में भेज देना पुरुष सत्ता की बर्बता ही कही जाएगी। पति अर्थात् रक्षक को ऐसी स्थिति में पत्नी का साथ देते हुए प्रतिपक्षी पर वार करना चाहिए, पर ऐसा न करके पुरुष का ही साथ देना, सात जन्मों की संगिनी को मझधार में छोड़ देना यही पुरुष का शक्ति प्रदर्शन हैं? आख़िर लाँछित तो औरत ही हुई है। मर्यादा के नाम पर स्त्री के स्वाभिमान को कुचलने का घिनौना खेल कब तक चलता रहेगा? इसी प्रकार तारा व मंदोदरी के साथ किया गया समाज का विधान नारी की पराधीनता और शोषण को ही तो दर्शाता है। पति की मृत्यु के बाद देवर से विवाह ज़ायज है यदि वह नारी न चाहे तो भी। पति दूसरी पत्नी ले आए तो सपत्नी के साथ अधिकार बाँटना भी उसकी विवशता ही तो कही जाएगी -- आख़िर यह सब क्यों? यही तो प्रश्न है, प्रत्येक स्वतंत्रता चाहे वह स्वच्छंदता के स्तर तक ही क्यों न पहुँच जाए, पुरुषों के लिए मान्य है, स्त्रियों को असहनीय पीड़ा सहकर भी उसका अनुगमन करना ही है क्योंकि वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं है। श्रेष्ठ गुणों से युक्त होने पर भी एक ओर समाज उन्हे स्वावलंबी नहीं बनने देना चाहता और दूसरी ओर कभी भी मझधार में छोड़ भी सकता है, गर्भवती होने की स्थिति में भी। अपमान का यह दंश नारी पराधीनता की हक़ीक़त ही बयान करता है।

सार रूप में यही कि वैदिक काल में स्त्री अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्र थी परंतु परवर्तीकाल में वर्ण व्यवस्था स्थापित होने पर उसकी सुरक्षा के नाम पर जो चक्रव्यूह रचा गया उससे नारी की स्वतंत्रता बीते दिनों की बात हो गई, उसकी उन्नति के समस्त द्वार अवरुद्ध हो गए परंतु सुरक्षा का प्रश्न ज्यों-का-त्यों उपस्थित रहा और तब तक बना रहेगा जब तक पुरुष समाज की स्वच्छंद वृत्ति और कामुकता पर लगाम नहीं लगाया जाता। किसी भी समाज की समस्त मर्यादाओं का सार तत्त्व स्त्री की सुरक्षा व स्वाभिमान की रक्षा है; न कि पराधीनता। यदि समय रहते ऐसा नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब नव संतति के अभाव में मानव का अस्तित्व ख़तरे में होगा क्योंकि वर्षों से ख़ामोश पड़ी शिलाओं से ही लावा फूटता है। क्या यह समाज नारी को कुचले बिना प्रगति नहीं कर सकता?

❑

संदर्भ

1. अथर्ववेद 2-36-1 डॉ. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 342
2. शर्मा व्यास, 'भारत का इतिहास', पृ. 131
3. डॉ. लता सिंहल, भारतीय संस्कृति में नारी, पृ. 132, 33
4. अथर्ववेद, डॉ. लता सिंहल, भारतीय संस्कृति मे नारी, पृ. 134
5. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, प्राचीन भारत में नारी, पृ. 13
6. शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्, न शोचन्ति तु यत्रैव वर्द्धते सर्वदा'' (3-57) मनुस्मृति
7. मनुस्मति-3-56 यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः। यत्रेतास्तु न पूजयन्ते, सर्वास्तत्राफलः क्रियाः।
8. तैत्तिरीय संहिता, 65, 8-2
9. भगवत शरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 54
10. डॉ. ए.एम. अल्तेकर, पोजिशन ऑफ वुमेन इन एन सिसेंट इंडिया पृ. 4-5
11. संयुक्त निकाय 1,6,4 ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ. 225
12. डॉ. शशि अवस्थी, प्राचीन भारतीय समाज, 199
13. मनुस्मृति, (11-5-48)
14. वेदव्यास 2.26, दासीवाऽडदिष्ट क्रार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत। डॉ. लता सिंहल, भारतीय संस्कृति में नारी, पृ. 308
15. डॉ. दयाशंकर शुक्ल का लेख, वैचारिकी भाग-32, अंक : 3

डॉ. अमिता तिवारी

आज के समय को प्रदीप्त करता उपन्यास 'रोशनी'

साहित्य समाज का दर्पण होता है। एक ओर साहित्य समाज की समस्याओं, बिडंबनाओं, विसंगतियों को दर्शाता है तो दूसरी ओर दिशा-निर्देश भी करता है। श्रेष्ठ साहित्य वही है जिसमें उस समय का सच हो, इस दृष्टि से संतोष खन्ना का उपन्यास 'रोशनी' ख़रा उतरता है।

21वीं सदी के दूसरे दशक में रचित उपन्यासों में 'रोशनी' उपन्यास अपनी अलग पहचान बना कर चलता है। यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आज की नारी का नया रूप दिखाई देता है। समकालीन उपन्यासों में नारी की बदलती अस्मिता के अनेक रूप दिखाई देते हैं, परंतु अधिकांश उपन्यासों में नारी की धुरी अपनी देह, अपनी सोच, अपनी मर्ज़ी के इर्द-गिर्द घूमती है; पर इस उपन्यास की पात्रा अपने से अधिक न केवल अपने परिवार के बारे में अपितु समाज के बारे में सोचती है। जहाँ वह अपनी अस्मिता के प्रति सचेत है, वहीं वह समाज के प्रति भी सचेत है। वह अपने से अधिक समाज के बारे में सोचती है। हमारे समाज में अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिनसे समाज त्रस्त है जिनके समाधान के लिए युवा वर्ग को आगे आना चाहिए। युवा वर्ग की यह ज़िम्मेदारी रोशनी उठाती है। समीप सड़क पर हुए एक्सीडेंट् की वह मूक दर्शक नहीं बनती बल्कि उस व्यक्ति को वह अस्पताल पहुँचाती है और समय पर उपचार होने से उस व्यक्ति की जान बच जाती है।

इस उपन्यास में लेखिका ने अपने समय की सभी समस्याओं, विसंगतियों और बिडंबनाओं का चित्रण तो किया ही है साथ ही उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है।

आज हमारा समाज रोडरेज, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, नेताओं की लूट-खसोट से त्राहि-त्राहि कर रहा है। लेखिका ने इन सभी समस्याओं को इस उपन्यास में आधार बनाया है। संतोष खन्ना जी भारतीय समाज की जुझारू महिला हैं। रोशनी संतोष खन्ना का चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में वर्तमान युग की विसंगतियों का चित्रण है। आज के युग में दंगे होना आम बात हो गई है। सिक्खों के दंगे, गोधरा कांड, गुजरात के दंगे, जम्मू-कश्मीर में हो रहे दंगों ने मानवीयता को शर्मसार किया है। कितनी बड़ी बिडंबना है कि दंगों के नाम पर मारे जा रहे हज़ारों-लाखों लोगों का जीवन केवल ख़बर बन कर रह गया है। हमारे समाज की न्याय व्यवस्था खोखली हो गई है। इस उपन्यास में लेखिका ने वर्तमान युग की भ्रष्ट राजनीति और राजनेताओं का पर्दाफ़ाश किया है।

आज का समाज अत्यंत उच्छृंखल हो गया है। पढ़-लिखकर बच्चे केवल अपने बारे में सोचते हैं। न तो उन्हें अपने माता पिता की चिंता है और न ही बड़ों के सम्मान की परवाह। आज के युग में माता पिता के प्रति उपेक्षा का भाव अधिक बढ़ गया है। माता-पिता बच्चों को अच्छी शिक्षा दे कर पढ़ा-लिखा कर क़ाबिल बना देते हैं। बच्चे विदेश चले जाते हैं और माता-पिता या तो घर के चौकीदार बन कर रह जाते हैं या फ़ालतू सामान की तरह घर के किसी एक कोने में पड़े रहते हैं। किसी के पास उनसे बातचीत करने, उनका दुःख-दर्द समझने, महसूस करने का समय नहीं होता। इसी प्रकार की पीड़ा व्यक्त करते हुए मि. गुप्ता रमाशंकर से कहते हैं ''पत्नी, बच्चों, दोस्तों से तो ख़ूब बात करता है। मेरे लिए सारे शब्द चुक गए हैं। बच्चे भी बस मतलब से बात करते हैं। बहू रोटी बना कर खिला देती है बस। अपने कमरे में पड़ा रहता हूँ।"[1]

आज भारतीयों के मन में विदेशों में बस जाने की अभिलाषा अत्यंत बढ़ गई है। इसी अभिलाषा के परिणामस्वरूप हर लड़की विदेश में रह रहे लड़के से शादी करना चाहती है। और विदेशों में रह रहे लड़के शादीशुदा होते हुए भी भारतीय लड़कियों से शादी कर लेते हैं। फिर या तो उन्हें छोड़ कर चले जाते हैं या वहाँ ले जाकर नौकरानी बना कर रखते हैं। रोशनी की मम्मी को जब दिनेश के शादी-शुदा होने का पता चलता है तो वह कहती है, ''अरे विलायत में रहने वाले सब ऐसे ही होते हैं। जानती हो मेरी ननद की बेटी का क्या हाल हुआ। विलायत से लड़का शादी कर महीने दो महीने मौज-मस्ती कर फुर्र हो गया। कह गया था वह जल्दी ही बुला लेगा। आज चार साल हो गए उसने कभी कोई खोज ख़बर नही ली।"[2]

इंदिरा गांधी की हत्या का विश्लेषण बड़ी बारीकी से किया गया है। 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या उनके सुरक्षाकर्मी बेअंत सिंह और सतवंत सिंह ने की। उसके बाद शहर में दंगे भड़क उठे। किस प्रकार समूची दिल्ली हिंदू-सिक्ख दंगों की चपेट में आ गई उसका बड़ा क्रमबद्ध चित्रण लेखिका ने किया है। सिक्खों को कैसे ज़िंदा जलाया जा रहा था। इस सबका वर्णन लेखिका ने बड़ी स्वाभाविकता से किया है। दंगे किसी भी समुदाय में हो अंततः मानवीयता जीवित रहती है। इसकी मिसाल भी 1984 के दंगों में देखी गई जब हिंदू परिवारों ने सिक्खों को अपने घरों छिपाकर उनकी रक्षा की।

आतंकवाद आज हमारे समाज का सबसे बड़ा नासूर है। ऐसा नासूर जो दिन-प्रतिदिन गहरा होता जा रहा है और इसका शिकार न जाने कितने निर्दोष बनते जा रहे हैं। शारदा रमाशंकर से कहता है, ''अंकल, आप इतिहास को कैसे भूल सकते हैं? हमने अपनी प्रिय प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को आतंकवाद की बलि वेदी पर चढ़ते देखा है। हमने अपने प्रधानमंत्री राजीव गाँधी को आतंकवाद के हाथों खो दिया -- ''देश की लंबी समय से सेवा में जुटे गाँधी परिवार ने आतंकवाद के हाथों बहुत बड़ी क़ीमत चुकाई है। उनका कसूर क्या था? यही कि वह आतंकवाद की लड़ाई लड़ रहे थे। ऐसे देश को टूटने से बचाने के लिए इंदिरा जी ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी।"[3]

भारतीय समाज में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों को लेखिका ने इस उपन्यास में दिखाया है। एक ओर लड़कियाँ अपने अधिकारों के लिए लड़ रही हैं तो दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए भी संघर्ष कर रही हैं। दहेज-प्रथा हमारे समाज में सदियों से चली आ रही है। इसका विरोध भरपूर हुआ पर आज भी यह समाप्त नही हुई, बल्कि इसका रूप बदल गया। आज हमारे समाज में परिवर्तन यह आया है कि आज स्वयं लड़किया इस प्रथा का विरोध कर रही हैं। 'रोशनी' उपन्यास की नीता को जब शादी के मंडप में पता चलता है कि उसके ससुर दहेज की माँग कर रहे हैं तो वह अपने हाथ से सगाई की अँगूठी उतार कर फेंकते हुए कहती है -- "मै ऐसे विवाह को नहीं मानती जिसे लोभ-लालच के रंगों से सजाया गया हो। पिताजी, मैंने आपसे पहले ही ही कहा था कि इनकी माँगें पूरी मत करो। आपने पहले दस माँगे न मानी होतीं तो आज यह नौबत न आती।"[4]

वास्तव में, संतोष जी का यह उपन्यास अपने समय का सच दर्शाता है। सामाजिक विसंगतियों, बदलते परिवेश, आज के जीवन के ज्वलंत प्रश्नों पर लेखिका ने गंभीरता से विचार किया है। इसकी नायिका आज की स्त्री-विमर्श वाली नायिका नहीं जिसे केवल अपने जीवन अपनी मुक्ति, अपनी देह की पड़ी हो; वह समाज के बारे में सोचती है। सामाजिक समस्याओं से जूझती है और आत्म-सम्मान के साथ जीती है। उसका लक्ष्य उदात्त है और यही इस उपन्यास की विशेषता है।

❑

संदर्भ

1. संतोष खन्ना, रोशनी, पृ. 180
2. वही, पृ. 150
3. वही, पृ. 180
4. वही, पृ. 106

सन्तोष खन्ना

हरियाणा में हिंदी में न्याय के विरुद्ध याचिका

जून, 2020 में हरियाणा के राज्यपाल ने भारत को संविधान के अनुच्छेद 348 के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति को लिखा है कि वह पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की कार्यवाही में हिंदी के प्रयोग की अनुमति दे दें। अनुच्छेद 348(2) में यह प्रावधान है कि राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाही में हिंदी अथवा राज्य की राजभाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकता है इसमें केवल अपवाद यह है कि उच्च न्यायालय में न्याय निर्णय, डिक्रियाँ और आदेश केवल अंग्रेज़ी में ही जारी किए जाएँगे।

हरियाणा राज्य में जनता को उनकी भाषा हिंदी में न्याय दिलाने के लिए हरियाणा सरकार ने हरियाणा राजभाषा अधिनियम, 1969 में संशोधन कर उसमें एक नई धारा 3-ए जोड़ दी है जिसमें कहा गया है कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के अधीनस्थ चलने वाले सभी सिविल और दंड न्यायालयों और राजस्व न्यायालयों में कार्य हिंदी में किया जाएगा।

इसके लिए हरियाणा सरकार ने कहा है कि वह हिंदी को हरियाणा न्यायालयों में लागू करने के लिए राज्य सरकार इस क़ानून के लागू होने के बाद छह महीने के भीतर कर्मचारियों को प्रशिक्षण सहित सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करेगी। कांग्रेस के विधायक बी.बी. बत्रा (अधिवक्ता) ने कहा है कि राज्य सरकार को इसे लागू करने से पहले उच्च न्यायालय के प्रशासन से सलाह कर लेनी चाहिए और तब तक इस फैसले को लागू न किया जाए।

इसके लिए हरियाणा के मुख्य मंत्री श्री मनोहर लाल खट्टर ने कहा है कि उन्होंने यह फैसला सोच-समझ कर किया है क्योंकि लोगों को अंग्रेज़ी में न्याय के संबंध में कुछ पता नहीं चलता। कई बार साक्षियों को यह भी पता नहीं चलता कि उनके साक्ष्य को सही रिकॉर्ड किया जा रहा है अथवा नहीं। उन्होंने विधान सभा में यह भी बताया कि इस संबंध में उन्हें एक पत्र मिला था जिस पर 78 विधायकों, सैकड़ों अधिवक्ताओं तथा महाधिवक्ता ने हस्ताक्षर कर कहा था कि नागरिकों को उनकी भाषा हिंदी में न्याय दिलाने के लिए न्यायालयों में हिंदी के प्रयोग को प्राधिकृत किया जाए। उन्होंने कहा कि राज्य की जनता की भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी को रोजमर्रा के प्रशासनिक और न्यायिक कार्यों में प्रयुक्त किया जाए। लोकतंत्र में न्याय का उद्देश्य ही यही है कि याची को अपनी ही भाषा में शीघ्र-से-शीघ्र न्याय मिले और न्यायालयों में कार्यवाही के दौरान उन्हें यह पता चलना चाहिए

कि उनके मुकद्दमे के बारे में न्यायालय में क्या कहा जा रहा है या किया जा रहा है।''

पंजाब में तो पहले से ही न्यायालयों में पंजाबी में काम हो रहा है। अब हरियाणा राजभाषा अधिनियम, 1969 की नई धारा 3-ए को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई है। अपनी याचिका में याची ने कहा है कि हरियाणा राजभाषा अधिनियम, 1969 में संशोधन यह सोच कर किया गया है कि हरियाणा में हर कानूनी प्रैक्टिस करने वाला न केवल हिंदी जानता है बल्कि उसे अच्छी तरह बोल भी सकता है। किंतु हरियाणा में सभी न्यायालयों में केवल राजभाषा हिंदी के लागू होने से हिंदी और गैर-हिंदी भाषी अधिवक्ताओं में एक अनुचित वर्गीकरण हो जाएगा।

- राजभाषा कानून में इस संशोधन से संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14) पेशे की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19) अस्मिता और आजीविका अर्जन तथा निजी स्वतंत्रता के अधिकार का (अनुच्छेद 21) का हनन होता है।
- हिंदी थोपने से पेशेवर अधिवक्ताओं के लिए समस्याएँ खड़ी हो जाएगी क्योंकि हिंदी को समझना और बात है और विधि विशेषज्ञता के लिए उसका इस्तेमाल आसान नहीं है।
- ऐसे अनेक अधिवक्ता होंगे जो हिंदी में अच्छी तरह औद्योगिक क्षेत्र से जुड़े मामलों को प्रस्तुत नहीं कर पाएँगे।
    1. सरकार ने भी अपना पक्ष रखते हुए कहा है कि 1966 में हरियाणा को पंजाब से भाषा के आधार पर ही अलग किया गया था क्योंकि हरियाणा की प्रमुख भाषा हिंदी है।
    2. पंजाब ने भी अपने सभी न्यायालयों में पंजाबी भाषा तभी लागू कर दी थी। वैसे भी भिन्न-भिन्न राज्यों में अंग्रेज़ी के स्थान पर काम-काज क्षेत्रीय भाषाओं में होने लगा है। कई बार साक्षी को पता नहीं होता कि उसका बयान सही रिकॉर्ड किया जा रहा है या नहीं। इसलिए हिंदी का प्रयोग बहुत जरूरी हो गया है।
- किसी भी लोकतंत्र में नागरिक को अपनी भाषा में न्याय मिलना चाहिए और वह कार्यवाही के दौरान गूँगा-बहरा बन कर नहीं रह सकता है।

वैसे भी भारत में हिंदी सबसे अधिक (43.63 प्रतिशत) बोली जाने वाली भाषा है। संविधान सभा ने भी 14 सितंबर, 1949 को अनुच्छेद 343(1) के अंतर्गत देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी को राजभाषा घोषित किया था।

वैसे भी राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार राज्यों के न्यायालयों में अंग्रेज़ी के स्थान पर हिंदी का प्रयोग किया जा सकता है।

❑

Phalguni Sharma

Legal Terrorism : A Perusal of the Problem with Special Reference to Misuse of Protective Laws Made for Women in India

Especially Sec. 498-A of IPC and Domestic Violence Act.

Abstract : Dowry, cruelty & domestic violence are the big social evils facing our country, and no civilized society should tolerate these and every effort should be made to eradicate these evils. People responsible of these evils should be punished severely. Enactments have been made to do so. In recent years the criminal law of the land have undergone radical changes to provide protection to women, more teeth have been provided to existing laws by new enactments. But other side of the coin, often unlooked upon should not be ignored. And this side of the coin – is the misuse of these provisions by some unscrupulous wives to wreak havoc on husbands and family and unfortunately, the remedy is becoming worse than the ailment. This article will provide an insight into these legal provisions and highlight the draconian nature of those provisions through its anomalies and inherent ambiguities.

Keywords : Dowry, cruelty, domestic violence, misuse.

Introduction

> "An unjust law is itself a species of violence. Arrest for its breach is more so." **– Mahatma Gandhi**

The fact is that it has been comprehensively proven in numerous studies that women are no less abusive as men in intimate relationships. Giving such sweeping legal powers to women while withholding protection to male victims is tantamount to systematic legal victimization of men. In the western world, the domestic violence laws are gender neutral and provide protection to the victims, both men and women. The fact that the Indian version explicitly prohibits any male victim to seek relief under this law defies all logic and is beyond comprehension.

On the face of it, the law appears to be a blessing for people in abusive or violent relationships. However, a careful analysis reveals that, under the ploy of "women and children welfare", this law is yet another misguided attempt to enact legislation to grant women legal supremacy over men and to create a society where men are deprived of their rights.

There are laws for the protection of women, children, minorities, the disabled and so on. There are special protective statues for animals as well, but most unfortunately, there is no law to protect man if he is tortured by his headstrong wife. The attitude of judiciary is over sympathetic to women and innocent man if he knocks at the door of police or Courts for justice, finds himself in the coils of snakes.

Domestic Violence is a serious problem faced by men, women and children. However, laws are only designed to confer legal protection to female victims of violence, ignoring violence against men and children. In addition, these laws often violate the civil rights of men, children and even fellow women.

Section 498A of the Indian Penal Code was passed to protect women against marital cruelty and dowry harassment.

This aforesaid law not only badly formulated but also badly implemented. in the year 2011 alone, as many as 1,39,403 men (husbands, husband's father, brothers and fmale relatives) and 41,298 women (husband's mother, sisters, female relatives) were arrested under such cruel laws. Understandably, in 2011 it self 62,433 Indian husbands committed suicide (i.e. a suicide every 9 minutes) because of legal pressures and harassment unleashed on them by their wives and in-laws. With thousands of cases (498A) happening per year, this is a social time-bomb,

The latest addition in a women's legal artillery is The Protection of Women from Domestic Violence Act 2005, This law is absolutely pro-women and anti-men, this law assumes every man as a virtual torturer" and considers only women as victims. This law is highly vague, and speaks of verbal, economical emotional abuse, which are impossible to quantify. Many husbands and their family members, falsely implicated in these cases have committed suicide after being jailed, unable to bear the social trauma. It is rightly said "Common sense often makes good law though the lack of it doesn't".

Protection of Women from Domestic Violence Act,2005:

Domestic violence is, undoubtedly, a human rights issue and serious deterrent to development of a nation. This particular Act has been enacted in keeping with the various guidelines given by several International conventions and declarations. Before the inception of this Act, there was no specific Act for protecting women from undue discrimination and unjustified violence.Though the Indian Penal Code had provisions, but this was not adequate and satisfactory in checking the atrocities committed against women. Thus, a desperate need was felt for an Act which could specifically cater to this cause and help women

attain a dignified status, and henceforth, the bill was passed by the legislature in 2005 and it was brought in application in 2006.

Misuse of the Act

The Protection of Women from Domestic Violence Act, hereinafter, referred as PWDV Act was incorporated in the year 2005, The main purpose of this Act is to prevent woman only woman from domestic violence. From the bare, reading of the definition of the Act, we can see that the term "aggrieved person" includes only women, means only the men can be prosecuted not the woman. In the 21st century, we treat women at par with men and there have been many incidence where a women are involved in insult, humiliation, verbal and emotional abuse to men. It is not a rare possibility that women are indulging in domestic violence against men but this is a reality. Our Constitution guarantees equality, means men and women must be equally treated, then why in PWDV Act, there are provisions for women only and not for men. Why women are protected and why there is presumption that men is the only gender which can do cruelty, domestic violence on women, why not vice-versa.

The PWDV Act has given an undue advantage to the women and it is the most lethal weapon which women can use against men to extort, exploit, and threaten men community just like terrorism. The PWDV Act has provisions like right to residence regardless of legal right on the property and maintenance. The provision in law makes the law easily vulnerable to misuse. which is a fact. Statistics have shown that only 2% of all the cases have resulted in conviction and 98% of the cases are deemed to be fake and there is no provision in PWDV Act if a fake case is lodged, then there is no provision for punishment for the women. For the name of protection of women, the prosecution of innocent men is against the rule of law, A women can misuse the law very easily like for example A man can be booked under the PWDV Act if she feels that she has been insulted.

Insult is a relative term, which is totally left to her discretion. Interestingly, if she insults and abuses him verbally or even physically, he does not have any legal recourse in this law, even the minor differences in matrimonial ties could invoke the provisions of PWDV Act. Moreover, the procedure of law is governed by CRPC that means a man even making a very light insult to a women is treated like a criminal. if the case is false, the reputation of man and his family is tainted and there are no steps or legal protection available to men to protect his reputation. In other words, this law treats men like sitting ducks.

For taking easy divorce and maintenance, the PWDV Act is the first weapon used by the women even if she is not subjected to any such type of domestic violence. Even if the matter is sub-judice, the men are obliged to pay maintenance to women, this means that punishment for men start as soon as false complaint is lodged, which is against the principles of natural justice where there is presumption of innocence.

The fact is PWDV Act has failed to attend the problems faced by women and men on subject of domestic violence, the law is often misused. The need of the society is to make more gender neutral laws which treat men and women equally in the cases of domestic violence and not to induce fear in the minds of innocent people like most of the men and give an extortion tool to the other gender. The PWDV Act is gender biased on the face of it. The PWDV Act needs to be amended with more gender neutral provisions to prevent its misuse and to achieve gender equality and fair justice.

Some of the other misuses are as follows

a) If wife/female live-in-partner demands any amount of money from husband/ male live-in-partner, for any reason whatsoever, he is legally bound to pay that amount in full, failing which he can be imprisoned. Under the pretext of preventing economic abuse of women, this law legalizes the extortion of money by women. Interestingly, if he asks for money from her, he can be jailed for that as well. Furthermore, he is responsible for paying the rent if the couple resides in a shared rented accommodation.

b) As per the law, wife, female or live-in-partner retains the right to the residence. This is a very convenient means of getting control of the house regardless of whether she has any legal right on the property. Moreover, if husband, male or live-in-partner is booked under PWDV, he is responsible for paying the rent as well, even though he may not be allowed to live in the house or he might even be in jail.

c) If wife, female, or live-in-partner decides not to cook and wishes to eat out in a restaurant every day, he cannot afford not to oblige, lest he invites that PWDV provision for "not providing food", for which husband, male or live-in-partner could be jailed.

d) If she has an affair and he tries to prevent her from meeting her lover, he could be punished under the PWDV Act, as he is preventing her from meeting someone.

e) He can be booked under the PWDV Act, if she feels that she has been insulted. Insult is a relative term, which is totally left to her discretion. Interestingly, if she insults and abuses him verbally or even physically, he does not have any legal recourse in this law.

These are just some of the ways in which women can exploit men in a legally permitted manner. The fact that the complaint by a woman will be treated, *prima facie,* as "true and genuine" opens up a whole new realm of possibilities where innocent men will be accused and implicated in false cases, just because they refuse to give in to her unreasonable demands.

Sec. 498A of Indian Penal Code, 1860

This section was introduced in 1983 to protect married women from being harassed or subjected to cruelty by

husbands and/or their relatives. As per this section, cruelty means:

1. Any willful conduct which is of nature as is likely to drive the woman to commit suicide or to cause grave injury or danger to her life ,limb or health (whether physical or mental)of the woman or
2. Harassment of the woman where such harassment is with a view to coercing her or any person related to her to meet any unlawful demand for any property or valuable security or is on account of failure by her or any person related to her to meet such demand .

The offence under this section is non-bailable (The accused must appear in the court to request bail), non compoundable (The complaint cannot be withdrawn by the petitioner) and cognizable (The accused can be arrested and jailed without warrant or investigation) and the offenders are liable for imprisonment up to 3 years as well as fine.

Extent of Misuse

The 498A law is based on the assumption that women have equal rights as the man to live a life of dignity. This fact has to be understood by the men and the women not only in its letter but also in its spirit. The law needs to be evoked when all other strategies fail to stop the violence and the harassment that makes the life of the woman miserable for normal functioning. Actually, in the case of a marriage that breaks down beyond repair, the best solution is separation and then divorce. It is the aggrieved party that would want the divorce and it may happen that the other party decline to agree for divorce for reasons that are emotional and irrational. If this solution also fails to be acceptable to one member, the law could be evoked to seek justice.

But wrong, perverse, abnormal attitudes of woman who thinks that she can nag/rag him on issues, that it is the sole duty of the man to take care of her, who take the husband for granted to fulfill all her unjust needs and to provide her with all luxuries of life, will take recourse to the law not for justice but to take revenge and to 'teach him a lesson' if he goes wrong in some way.

Following are the demerits of the Sec. 498A

1. Husband & their family members arrested on a simple compliant filed by the wife & their family members without any investigation as easy as ordering a Pizza on the phone. Once a Husband and family members are put behind bars, no marriage can then survive. Isn't then this provision is ONLY FOR VENGEANCE and not for Family Harmony?
2. Arrest of husband family including his mother & sister even married sister who is not residing with brother but wife knowingly mentions her name in FIR. So conclusion is that female members are also harassed by the wife by misusing sec.498-A of IPC.
3. In every false case, at least two women, a mother-in-law and a sister-in-law are accused. Minor girls, pregnant women ,married and unmarried sisters, ailing mothers and even aged grandmothers have been sent behind

the bars based on mere allegations and subjected to long-drawn trialals before being declared innocent. Even children are not being spared from the suffering.

4. When husband & their family arrested by the police, immediately they lost their credibility in the social fields but when they prove that they are innocent then who is responsible for their arrest at the initial stage.
5. If after trail, it is proved by the husband that he is innocent then no suo - moto action can be taken against wife by the court. The compliant for defamation can be filed by the husband....but appeal procedure again starts. So it delays the matter and there is no chance for justice for the husbands & their respective families.
6. The life of the husband family is completely destroyed till the final decision of the complaint
7. Our Indian police officer also plays very disgusting role. The investigating officer demands bribe for removing the name of husband's family members from the FIR. They also misuse section 498-A.
8. With blatant misuse of this provision, more than twice the number of Husbands (as compared to wives) in India are forced to commit suicides which no one, NO ONE is ready to look at and a Blind Eye and Deaf Ear is turned towards it.
9. Some complaints are made in anger. The rampant corruption in our system has led to misuse of women protection laws. When an angry wife approaches the police, she is received by lower rank officers. Depending on her husband's financial condition,these officers advise the woman on further course of action. Mostly, women from lower income groups don't file such complaints. It's usually the financially well-off women who register complaints under Section 498A.

Judicial Approach

Indian Courts in their recent judgments have looked into the matter of misuse of Sec.-498A I.P.C. As this Section provides that when an F.I.R. is lodged, all the family members of the husband can be roped in. In their judicial observations and remarks, the courts have expressed deep anguish over this law. Here are some recent judicial observations.

1990 Punjab and Haryana High court observed in Jasbir Kaur vs. State of Haryana , (1990)2 Rec Cri R 243 case as : "It is known that an estranged wife will go to any extent to rope in as many relatives of the husband as possible in a desperate effort to salvage whatever remains of an estranged marriage."

In Kanaraj vs. State of Punjab 2000 CriLJ2993, the apex court observed as: "for the fault of the husband, the in-laws or other relatives cannot in all cases be held to be involved. The acts attributed to such persons have to be proved beyond reasonable doubt and they cannot be held responsible by mere conjectures and implications. The tendency to rope in relatives of the

husband as accused has to be curbed" **Karnataka High Court, in the case of State Vs. Srikanth 2002 CriLJ3605, observed as:**

"Roping in of the whole of the family including brothers and sisters-in-law has to be depreciated unless there is a specific material against these persons, it is down right on the part of the police to include the whole of the family as accused."

The Hon'ble Supreme Court, in a relatively recent case, Sushil Kumar Sharma vs. Union of India and others JT 2005(6) 266

"The object of the provision is prevention of the dowry menace. But as has been rightly contented by the petitioner that many instances have come to light where the complaints are not bonafide and have been filed with oblique motive. In such cases acquittal of the accused does not in all cases wipe out the ignominy suffered during and prior to trial. Sometimes adverse media coverage adds to the misery. The question, therefore, is what remedial measures can be taken to prevent abuse of the well-intentioned provision. Merely because the provision is constitutional and intra vires, does not give a licence to unscrupulous persons to wreck personal vendetta or unleash harassment. It may, therefore, become necessary for the legislature to find out ways how the makers of frivolous complaints or allegations can be appropriately dealt with. Till then, the Courts have to take care of the situation within the existing frame work.

Malimath Committee Report on Reforms of Criminal Justice System :

CRUELTY BY HUSBAND OR RELATIVE OF HUSBAND – SECTION 498 OF IPC :

There is a general complaint that section 498A of the IPC regarding cruelty by the husband or his relatives is subjected to gross misuse and many times operates against the interest of the wife herself. This offence is non-bailable and non-compoundable.

Hence, husband and other members of the family are arrested and can be behind the bars which may result in husband losing his job. Even if the wife is willing to condone and forgive the lapse of the husband and live in matrimony, this provision comes in the way of spouses returning to the matrimonial home. This hardship can be avoided by making the offence bailable and compoundable.

Conclusion and Suggestions

The fact is domestic violence is a serious problem and a neutral and unprejudiced law is needed to protect the genuine victims of domestic violence, irrespective of gender. The perpetrators of domestic violence need to be appropriately punished and dealt with. At the same time, protection cannot be withheld from real victims for any reason whatsoever, least of all their gender. One can be certain that there is something sinister about a law, when it intimidates and instills fear in innocent people. When a person who has not

committed any crime, begins to fear punishment under the provisions of a law, it is not a law anymore – it is state sponsored terrorism.

The PWD Act and Sec. 498A are important laws but the practice of arresting people without investigation needs to bechanged. These laws don't follow the fundamental legal premise that a person is innocent until he is proven guilty.Unreasonable and easily misused laws like IPC 498-A and PWDV Act are creating a situation of fear and mutual distrust, and adversely affecting inter-personal relationships between men and women in the society. There is fear psychosis among men, who find it difficult to repose faith in women or marriage.

It is high time for law makers/law enforcing agencies/judges to pay heed and review these laws in public interest to check the growing misuse of these laws to ensure impartial justice and to protect the pious and sacred institution of marriage. There's need to revise the stringent Section 498A of the Indian Penal Code. The offence committed under this section should be made bailable, compoundable & non cognizable. Since the nature of charges is very serious, the matter should be investigated by an officer of superior rank, a senior officer should listen to wife or live-in-partner grievances and give her sound advice. Most of the case registered under sec. 498a are frivolous and based on false accusation the person who misuses laws should be arrested and put behind bars. Thus, any enactment, which forcefully subjects a section of society to conduct and "serve" the other section at its willful pleasure, would only enhance the level of oppression in the society and leave incurable marks on the face of the most democratic society.

Like animals !protect human rights & dignity of tortured husbands

❑

References

1. Indian Penal Code,1860
2. Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005
3. http://fight-against-legal-terrorism.blogspot.in/2013/01/a-warning-for-indian-bachelors.html
4. http://www.498a.org
5. http://www.saveindianfamily.org
6. http://sahodar.org
7. http://mynation.net
8. http://www.lawyersclubindia.com/articles/Misuse-of-Domestic-Violence-Act-5409.asp
9. http://rshrc.nic.in/Project/20.%20Misuse%20of%20women%20Law.pdf
10. http://www.legalserviceindia.com

Dr. Rajinder Verma and Bhumika Sharma

Governmental Organizations and Institutes vis-à-vis Labour Welfare in India

The world including India is witnessing labour welfare reforms In India there exists a number of organizations working under the Ministry of Labour and Employment to provide various services to the employers and the employees. The Ministry of Labour and Employment is responsible for laying down policies in respect of labour matters including industrial relations, co-operation between labour and management, settlement of labour disputes, regulation of wages and other conditions of work and safety, women labour and child labour, labour welfare, social security etc. It is also engaged in the development and administration of employment service and training of craftsmen on national basis. The implementation of the policies in regard to the above matter is the responsibility of the State Governments subject to control and direction of the Central Govt. except in the case of labour employed in Railways, Mines, Oilfields, Banking and Insurance Companies having branches in more than one State, major Ports and Central Government Undertakings. In these cases, the Central Government retains the responsibility in labour matters including employment and training and provides technical advice as and when necessary. The Ministry is entrusted with numerous functions primarily to promote harmonious relations between labour and management and to regulate wages and other conditions of work in the central sphere; to conduct evaluatory studies of implementation of labour laws, industrial relations, personnel policies and practices etc., in Public Sector Undertakings; to collect and publish statistics to conduct enquiries, surveys and research studies on various labour subjects; to provide welfare measures for certain sections of the unorganised labour etc.

1. Various Labour Welfare Organizations in India

This part enumerates the various bodies formed by the government to oversee different aspects of labour welfare -

Table 1 : Various Labour Welfare Organizations in India

1. Central Board of Trustees under Employees' Provident Funds & Miscellaneous Provisions Act, 1952 **Year** 1952 : **Function** To administer a contributory provident fund, pension scheme and an insurance scheme for

the workforce engaged in the organized sector in India The Board operates three schemes - Employees Provident Scheme, 1952 (EPF); Pension Scheme, 1995 (EPS); and Insurance Scheme, 1976 (EDLI).

2. Employees' Provident Fund Organization **Year** 1952 : **Function** To assist Central Board of Trustees
3. Employees' State Insurance Corporation **Year** 1952 : **Function** To administer the scheme of Employees' State Insurance
4. Director General Labour Welfare (DGLW) : To deal with the matters concerning policy and legislation related to workers in the unorganised sector and administration of welfare funds for specified categories of workers through seventeen regions headed by welfare commissioner who implement the welfare schemes made under the welfare funds.
5. Directorate General of Mines Safety(DGMS) **Year** 1901 : **Function** To administer the Mines Act, 1952 and the Rules and Regulations framed there under the Act.
6. Directorate General Factory Advice Service and Labour Institutes **Year** 1945 : **Function** To advise Central And State Governments on administration of the Factories Act and coordinating the factory inspection services in the States; to serve as a technical arm to assist the Ministry in formulating national policies on occupational safety and health in factories and docks.
7. Central Government Industrial Tribunal -cum-Labour Courts **Year** 1947 : **Function** To adjudicate on industrial disputes arising in Central Sphere
8. Chief Labour Commissioner **Year** 1945 : **Function** To prevent and settle industrial disputes through conciliation/mediation as well as enforcement of Labour Laws and Rules made there under in Central Sphere.

Table 2 : Other Bodies dealing with Labour Issues at Central and State level

1. **Body :** Indian Labour Conference (ILC) **: Role** To act as an apex level tripartite consultative committee in the Ministry of Labour & Employment to advise the Government on the issues concerning working class of the country.
2. **Body :**Tripartite Committee in Mines **: Role** To review the status of safety in mines and the adequacy of existing measures in a spirit of mutual cooperation. The conference also suggests measures for further improvement in safety, welfare and health of mine workers.
3. **Body :**Tripartite Committee in Docks **: Role** To advice upon such matters arising out of the administration of the Dock Workers (Safety, Health and Welfare) Act, 1986
4. **Body :**Directorate of Employment (DGE) **: Role** To lay policies, standards, norms and guidelines throughout the country for coordinating employment related services

5. **Body :** Labour Bureau **: Role** To collect, compile and publish labour statistics and other information relating to labour such as employment and unemployment, wages, earnings, industrial relations, working conditions etc. To compile and publish the Consumer Price Index Numbers for industrial and agricultural, rural workers
6. **Body :** Central Advisory Board (CAB)**: Role** To advise the Central and State Governments in the matters of the fixation and revision of minimum rates of wages and other matters under this Act and for coordinating the work of the Advisory Boards, the Central Government.
7. **Body :** Minimum Wages AdvisoryBoard (MWAB) **: Role** To co-ordinate the work of committees and subcommittees appointed under section 5 and advising the appropriate Government generally in the matter of fixing and revising minimum rates of wages
8. **Body :** WageBoards for Working Journalists and other for Non-Journalist Newspaper Employees under Section 9 under the Working Journalists and other Newspaper Employees (Conditions of Service) & Miscellaneous Provisions Act, 1955 **: Role** To fix or revise rates of wages of working journalists and other newspaper employees and journalists
10. **Body :** Wage Boards for for Non-Journalist Newspaper Employees under Section 13 C respectively under the Working Journalists and other Newspaper Employees (Conditions of Service) & Miscellaneous Provisions Act, 1955 **: Role** To fix or revise rates of wages of non-journalists of news agencies
9. **Body :** Central Level Monitoring Committee has been set up under the Chairmanship of Principal Labour & Employment Advisor **: Role** To monitor the implementation of the recommendations of the Majithia Wage Boards has been accepted by the Government and notified in November 2011
10. **Body :** National Social Security Board **: Role** To recommend the Central Government suitable schemes for different sections of unorganised workers; monitor implementation of schemes and advise the Central Government on matters arising out of the administration of the Unorganised Workers' Social Security Act, 2008
11. **Body :** The Central and State Advisory Contract Labour Boards **: Role** To advise respective Governments on matters arising out of the administration of the Contract Labour (Regulation and Abolition) Act, 1970
12. **Body :** Central Advisory Committee (CAC) on Equal Remuneration Act, 1976 **: Role** To review the steps taken for effective implementation of the Act

3. Training, Research and Education Institutes vis-Labour in India

Following are the Research and Training institutes working under the Central Government dealing with labour etc. –

Table 3 : Training, Research and Education Institutes vis-Labour in India

1. DattopantThengadi National Board for Workers Education and Development (erstwhile Central Board for Workers Education) **Year** 1958 : **Function** To conduct various training programmes for the workers of formal and informal sectors at national, regional and unit levels.
2. Pandit DeenDayal Upadhyaya National Academy For Training And Research In Social Security **Year** 1990 : **Function** To conduct national and international training programmes and workshops in Social Security
3. V.V. Giri National Labour Institute (It was started as National Labour Institute. It was renamed in 1995 in honour of Shri V.V. Giri, a former President of India, renowned trade union leader and doyen of labour studies in the country)**Year** 1962 : **Function** To undertake and coordinate research in the field of labour, especially on unorganized labour.
4. Directorate General of Employment : To develop and coordinate programmes relating to vocational training including Women's Vocational Training and Employment Services at National level.
5. Indian Institute of Workers Education **Year** 1970 : **Function** To enable the Board (Central Board for Workers Education) to conduct National level training programmes for achieving its objectives, to develop stronger and more responsible trade unions, to promote the growth of democratic process in trade union organization and administration, to equip organized labour to take its place in a democratic society and to inculcate in them the spirit of commonality of interests.
6. National Institute of Occupational Health (NIOH) **Year** 1966 : **Function** To conduct research on occupational and environmental health to provide a safe, healthy and comfortable work environment and living, through multidisciplinary approach (one of the prime institutes of the Indian Council of Medical Research (ICMR))
7. National Safety Council (NSC) **Year** 1966 : **Function** To conduct a variety of consultancy assignments such as training, research, risk assessment, or work environment measurements.
8. National Institute of Occupational & Health (NIOSH) : To support academic degree programs and research training opportunities in the core areas of industrial hygiene, occupational health nursing, occupational medicine, and occupational safety
9. Indian Association of Occupational Health (IAOH) **Year** 1948

Table 3 above enumerates various Autonomous Institutes dealing with labour research and studies in India.

Thus the above compilation shows that a number of specialized institutions exist in India to deal with different labour issues. It is appreciable how the Governments from time to time and as per the public requirements, constitute new bodies. It is hoped that the various institutions effectively discharge their functions.

❑

Priyanka Singh

Legal Aid in the United States

Legal aid in the United States appeared as early as the 1870s, but for the most part, the US legal aid system remained piecemeal and underfunded until well into the 20th century.

History : In the early 1960s a new model for legal services emerged. Foundations, particularly the Ford Foundation, began to fund legal services programs located in multi – service social agencies, based on a philosophy that legal services should be a component of an overall anti – poverty effort.

In a series of cases, the US Supreme Court ruled that American indigents do have a right to counsel, but only in criminal cases see. See Gideon v. Wainwright. A few states (like California) have also guaranteed the right to counsel in "quasi-criminal" cases like paternity actions and involuntary terminations of parental rights. The federal government and some states have offices of public defenders that assist indigent defendants, while other states have systems for outsourcing the work to private lawyers.

In 1974. Congress created the Legal Services Corporation (LSC) to provide federal funding for civil (non-criminal) legal aid services. LSC's funding has fluctuated dramatically over the past three decades depending upon which political parties were in control of Congress and the White House. For example, LSC suffered staggering funding cuts under former president Ronald Reagan in the early 1980s (after he was unable to carry out his stated objective of abolishing LSC altogether), but then flourished under former President Bill Clinton.

System today – Legal aid for civil cases is currently provided by a variety of public interest law firms and community legal clinics, which often have "legal aid" or "legal services" in their names. Such firms may impose income and resource ceilings as well as restrictions on the types of cases they will take, because there are always too many potential clients and not enough money to go around. Common types of cases include: denial or deprivation of government benefits, evictions, domestic violence, immigration status, and discrimination. Some legal aid organizations serve as outside counsel to small nonprofit organizations that lack in-house counsel. Funding usually comes from charities, private donors, the federal government (see below on LSC) and some local and state governments. Most typical legal aid work involves counseling, informal

negotiation, and appearances in administrative hearings, as opposed to formal litigation in the courts. However, the discovery of severe or recurring injustice with a large number of victims will sometimes justify the cost of large-scale impact litigation Education and law reform activities are also sometimes undertaken.

Legal aid organizations that take LSC money tend to have more staff and services and can help more clients, but must also conform to strict government regulations that require careful timekeeping and prohibit lobbying and class actions. Many legal aid organizations refuse to take LSC money, and can continue to file class actions and directly lobby legislatures on behalf of the poor. Many organizations that provide civil legal services are heavily dependent on Interest on Lawyer Trust Accounts for funding.

However, even with supplemental funding from LSC, the total amount of legal aid available for civil cases is still grossly inadequate. According to LSC's widely released 2005 report "Documenting the Justice Gap in America: The Current Unmet Civil Legal Needs of Low-Income Americans", all legal aid offices nationwide, LSC- funded or not, are together able to meet only about 20 percent of the estimated legal needs of low-income people in the United States. **Legal aid in England and Wales-**Legal aid in England and Wales was originally established by the Legal Aid and Advice Act 1949. Today legal aid in England and Wales costs the taxpayer f2bn a year – higher per capita spend than anywhere else in the world – and is available to around 29% of adults.

Today, legal aid in England and Wales is administered by the Legal Services Commission, and is available for most criminal cases, and many types of civil cases with exceptions including libel, most personal injury cases (which are now dealt with under Conditional Free Agreements, a species of contingency fee) and cases associated with the running of a business. Family cases are also often covered Depending on the type of case, legal aid may not be means tested.

In July 2004 the European Court of Human Rights ruled that the lack of legal aid in defamation cases (which was the position under the Legal Aid Act 1988), which was the applicable Act at the time of the Mc Libel case, could violate a defendant's right. The Access to justice ACT 1999 has a provision which allows the Lord Chancellor to authorize legal aid funding in cases which are otherwise out of scope of the legal aid scheme under the exceptional funding provisions. A defendant in a position similar to the Mc Libel defendants could potentially have legal aid assistance if their application passed the exceptional funding criteria.

Criminal legal aid is generally provided through private firms of solicitors and barristers in private practice. There are a limited number of public defenders. Civil legal aid is provided through solicitors and barristers in private practice but also non-lawyers working in law centers and not-for-profit advice agencies.

The provision of legal aid is governed by the Access to Justice Act 1999 and supplementary legislation.

Legal aid in 21st century Britain

This year marks the 60th anniversary of the Legal Aid and Advice Act 1949, which sought to establish our legal aid system as a cornerstone of the welfare state. The idea was that everyone would have equal access to proper legal advice in the same way that they would have access to free healthcare and a decent education.

But with funding for legal aid being drastically cut, where can you go for advice and what kind of help can you expect? Do you have a right to state-funded help to assist you in preparing your case, or for a lawyer to represent you in court or before a tribunal? And how will the courts treat you?

The justice gap aims to answer those questions by building a profile of the legal system as experienced by the general public. Over the next year the Guardian will interview people who are using citizen's advice, law centers, community centers and court buildings up and down the land.

We will highlight parts of the justice system hidden from public scrutiny, but which have a huge impact on people's lives including the family and coroners' court through to parole board hearings in prisons.

The project will be based on research conducted in the next 12 months by the charity Legal Action Group for its Access to justice Audit.

The courtroom is often the place where ordinary people meet the impersonal forces of bureaucracy for the first time, especially when they find themselves victims of a failing economy. If you have fallen behind on your mortgage and your bank starts repossession proceedings (as happened to 150,000 homeowners last year), the decision as to whether you keep the roof over your head takes place in a county court. If you are one of the 40,000 people who lose their job every month and want to challenge the fairness of that decision, you will end up in front of a judge sitting in an employment tribunal.

"Legal aid should be available in those types of case in which lawyers normally represented private individual clients", said Lord Rushcliffe in his 1945 report which was a precursor to the act. Public funding should not be limited to those people "normally classed as poor", he argued, but should include those of "small or moderate means".

Legal aid in Australia : Australia has a federal system of Government comprising federal, state and territory jurisdictions. The Australia (Commonwealth) and State and Territory governments are each responsible for the provision of legal aid for matters arising under their laws.

Legal aid for both Commonwealth and State matters is primarily delivered through State and Territory legal aid commissions (LACs), which are independent statutory agencies established under State and Territory legislation. The Australia Government funds the provision of legal aid for Commonwealth family, civil and criminal law matters under agreements with State and Territory

government and LACs. The majority of Commonwealth matters fall within the family law jurisdiction.

Legal aid commissions use a mixed model to deliver legal representation services. A grant of assistance legal representation may be assigned to either a salaried in house lawyer or referred to a private legal practitioner. The mixed model is particularly advantageous for providing service to clients in regional areas and in cases where a conflict of interest of interest means the same lawyer cannot represent both parties.

The Australia Government and most State and Territory Government also fund community legal centers, which are independent, non-profit organizations which provide referral, advice and assistance to people with legal problems. Additionally, the Australia Government funds financial assistance for legal services under certain statutory schemes and legal service for Indigenous Australia.

By way of history, the Australia Government took its first major step towards a national system of legal aid when it established the Legal Services Bureau in 1942. However, there was a move in the late 1970s to service delivery by the States and Territories (not the federal arm of government). In 1977, the Australia Government enacted the Commonwealth Legal Aid 1977 (LAC Act) which established cooperative arrangements between the Australia Government and State and Territory governments under which legal aid would be provided by independent legal aid commissions to be established under State and Territory legislation. The process of establishing the LACs took a number of years. It commenced in 1976 with the establishment of the Legal Aid Commission of Western Australia and ended in 1990 with the establishment of the Legal Aid Commission of Tasmania. The cooperative arrangements that were established by the LAC Act provided for Commonwealth and State and Territory legal aid funding agreements, which began in 1987.

In July 1997, the Australian Government changed its arrangements to directly fund legal aid services for Commonwealth law matters. Under this arrangement the State and Territories fund assistance in respect of their own laws.

Legal aid in Japan : Legal aid in Japan, which is a unitary jurisdiction, is solely provided through the Legal Aid Department, which is in turn overseen by the Legal Aid Services Council.

Administratively the Legal Aid Department was under the Administration Wing of the Chief Secretary's Office. In 2007 it was moved to the Home Affairs Bureau, which chiefly oversees cultural matters and local administration. This was heavily criticized by the opposition pro- democracy camp for further jeopardizing neutrality of the provision of legal aid. They voted en bloc against the whole package of reorganization of policy bureau, of which the transfer of the Legal Aid Department was part of.

Legal aid in The Canadian

The Constitutional Framework : The organization of Canada's judicial system is a function of Canada's Constitution, and particularly of the Constitution Act, 1867. By virtue of that Act, authority for the judicial system in Canada is divided between the federal government and the ten provincial government. The latter are given jurisdiction over "the administration of justice" in the provinces, which includes "the constitution, organization and maintenance" of the courts, both civil and criminal, in the province, as well as civil procedure in those courts. However, this jurisdiction does not extend to the appointment of the judges of all of these courts. The power to appoint the judges of the superior courts in the provinces – which includes the provincial courts of appeal as well as the trail courts of general jurisdiction – is given to the federal government, as is the obligation to provide for the remuneration of those judges and the authority to remove them. This latter authority is a limited one and, in fact, has never been exercised.

The federal government is also given the authority to establish "a General Court of Appeal for Canada and any Additional Court for the better Administration of the Laws of Canada". It has used this authority to create the Supreme Court of Canada as well as the Federal Court of Appeal, the Federal Court and the Tax Court of Canada. The federal government also has, as part of its jurisdiction over criminal law, exclusive authority over the procedure in courts of criminal jurisdiction.

What emerges from these allocations of jurisdiction in the Constitution is a court system in which provincial government have jurisdiction over both the constitution, organization and maintenance of, and the appointment of judges to, the lowest level of courts (generally known simply as "provincial courts"), while the federal government has authority over the constitution, organization and maintenance of, and the appointment of judges to, the Supreme Court of Canada, the Federal Court of Appeal, the Federal Court and the Tax Court of Canada. Authority over the superior courts in each province is shared between the provincial and federal government; the provinces have jurisdiction over the constitution, organization and maintenance of these courts, while the federal government has authority to appoint the judges. The fact that jurisdiction over these courts is divided in this way means that, in order for these courts to function properly, the federal and provincial government are required to cooperate in the exercise of their respective authorities.

The courts in Canada are organized in a four-tiered structure. The Supreme Court of Canada sits at the apex of the structure and, consistent with its role as "a General Court of Appeal for Canada", hears appeals from both the federal court system, headed by the Federal Court of Appeal and the provincial court systems, headed in each province by that province's Court of Appeal. In contrast to its counterpart in the United State, therefore, the Supreme Court of Canada

functions as a national, and not merely federal, court of last resort.

The next tier down from the Supreme Court of Canada consists of the Federal Court of Appeal and the various provincial courts of appeal. Two of these latter courts, it should be noted, also function as the courts of appeal for the three federal territories in northern Canada, the Yukon Territory, the Northwest Territories, and the Nunavut Territory.

The next tier down consists of the Federal Court, the Tax Court of Canada and the provincial and territorial superior Courts of general jurisdiction. These latter courts can fairly be described as the lynchpin of the Canadian judicial system since, reflecting the role of their English counterparts, on which they were modeled; they are the only courts in the system with inherent jurisdiction in addition to jurisdiction granted by federal and provincial statutes.

At the bottom of the hierarchy are the courts typically described as provincial courts? These courts are generally divided within each province into various divisions defined by the subject matter of their respective jurisdictions; hence, one usually finds a Traffic Division, a Small Claims Division, a Family Division a Criminal Division, and so on.

The Supreme Court of Canada

The Supreme Court of Canada was constituted in 1875 by an act of Parliament and is now governed by the Supreme Court Act. It is comprised of a Chief justice and eight puisne judges (puisne meaning ranked after), all appointed by the three judges coming from Quebec. Supreme Court judges must live within forty kilometers of the National Capital Region.

The Supreme Court is a general court of appeal from all other Canadian courts of law. It, therefore, has jurisdiction over disputes in all areas of the law, including constitutional law, administrative law, criminal law and private law.

In most cases, appeals are heard by the Court only if leave is first given. Such leave will be given by the Court when a case involves a question of public importance, or if it raises an important issue of law or of mixed law and fact, or if the matter is, for any other reason, of such a nature or significance as to warrant consideration of the Court Leave to appeal to the Court may also be given by a federal or provincial appellate court.

There are cases where leave is not required. In criminal cases, the Criminal Code gives a right of appeal where acquittal has been set aside in the provincial court of appeal or where, in the provincial court of appeal, one judge dissents on a point of law.

The Supreme Court does have a special kind of “reference” jurisdiction, original in character, given by s. 53 of the Supreme Court Act. The Governor-in-Council may refer to the Court, for its opinion, important questions of law or fact concerning the interpretation of the constitution, the constitutionality or interpretation of any federal or provincial legislation, or the powers of parliament

or of the provincial legislatures or their respective governments or any other important question of law or fact concerning any matter. Where the government of any province has any special interest in any question put in reference, the Attorney General of the province shall be notified in order that he or she may be heard.

Constitutional questions may also be raised in regular appeals involving individual litigants or government or governmental agencies. In such cases the federal and provincial governments are notified of the constitutional question and may intervene to argue it.

In light of the broad scope of the Supreme Court of Canada's jurisdiction, it is clear that the Canadian judicial system differs from that of many continental European and Latin and South American countries, where it is not unusual for there to be separate courts of last resort for both constitutional law and administrative law cases in addition to a general court of appeal.

Government Funding of Legal Aid in Canada

For legal aid services for criminal law matters in Canada, the federal government negotiated cost-sharing agreements with the provinces in 1972, agreeing to pay about half of criminal legal aid services. In 1990-91, the Canadian federal government capped its annual contributions at 1989- 90 levels, or $86 million. It's now running at about $80 million a year, according to the Canadian Bar Association.

Federal government funding for legal aid services for civil law matters began in the late 1970s and in 1994-95 was rolled into Canada Health and Social Transfer payments to the provinces. About $90 million a year is transferred by the federal government to the provincial governments for civil legal aid, and the provinces decide how to spend it.

Canadian Bar Association Action

After years of lobbying for improved legal aid, the Canadian Bar Association plans further action to help resolve the legal aid crisis in Canada:

- The Canadian Bar Association has formed a coalition of nine organizations with concerns about the Canadian legal aid system, including the BC public Interest Advocacy Centre, ARCH – A Legal Resource Centre for People with Disabilities, and the Canadian Council of Refugees
- The Canadian Bar Association is expanding its Legal Aid Watch program, asking members to report on real-life stories where individuals have suffered because of lack of legal aid
- The coalition is looking for test cases to use to file a Charter of Rights challenge to broaden the right of Canadians to legal representation. They feel it is time to get the courts to order governments in Canada to provide adequate legal aid services.

The Canadian Bar Association is also continuing to urge the Canadian federal government to take a stronger role in legal aid, not only in increased funding, but also in negotiating national standards for legal aid in Canada.

Legal aid in Ontario, : Legal aid in Ontario is administered by legal Aid Ontario (LAO). Legal Aid Ontario provides funding to more than one million Ontario residents who need help with their legal problems. Legal aid is available to low income individuals and disadvantaged communities for a variety of legal problems, including criminal matters, family disputes, immigration and refugee hearings and poverty law issues such as basic employment rights, worker's compensation, landlord/tenant disputes, disability support and family benefits payments.

Legal Aid in Ontario is provided in a number of ways: the largest is a legal aid certificate program. The program provides low income people with certificates for a set number of hours of service to be provided by a private lawyer (i.e. a 'judiciary' model). When the lawyer has completed their work, they bill Legal Aid Ontario for the services they provided. The certificate system is limited by the fact that many lawyers do not accept certificate because the hourly rates are too low. Lawyers are also wary of accepting cases because a certificate may not provide enough hours for the lawyer to provide adequate representation.

Ontario also has a community legal clinic system. Ontario's 80 Community legal clinics are staffed by lawyers, community legal workers, and sometimes other professionals or law students. Each legal clinic is run by a volunteer board of directors composed of members from the community. Legal clinics provide information, representation, and advice onvarious kinds of legal issues, including social assistance, housing, refugee and immigration law, employment law, human rights, workers' compensation, and the Canada Pension Plan. Many legal clinics also produce community legal education materials, offer workshops and information sessions, undertake law reform initiatives and engage in other community development activities including campaigns to change the law. Specialty legal clinics serve a particular community or focus on a specific area of law. Unlike general service legal clinics, most specialty legal clinics are not limited to serving a particular geographic area.

The clinic system is seen by many to be a preferred model of legal aid delivery. Services are provided at the community level and clients therefore benefit from the agency's connections to other services, e.g. health care. Legal problems are seen in their social context and issues of broader societal concern can be identified by clients and staff. The model is also financially beneficial in that resources are invested in the development of long term stable service located in and informed by the communities they serve. This way, resources can be devoted to legal work that is most beneficial to the community Clinics are independently governed, but primarily funded by Legal Aid Ontario.

Ontario also provides immediate legal aid service to those appearing in court via duty counsel. Duty counsel is salaried lawyers and per diem lawyer who will

represent low income people in criminal or family court. There is also a duty counsel program which provides representation to low income tenants appearing before the Ontario Rental Housing Tribunal.

Funding for Legal Aid in Ontario has been frozen for many years. While the Ontario Liberal Government recently announced a 19 million increase in funding over the next three years, this will do little to remedy the serious and chronic underfunding of the system. The lack of funding means that legal aid lawyers are paid half as much as other government funded lawyers and must do their work with a severe lack of resources. The result is that many new lawyers with massive student debt cannot consider legal aid careers, other lawyers leave the system frustrated at the lack of recognition for their work, and those hiring new lawyers in the system find it hard to find well qualified lawyers who will even consider taking legal aid jobs. This undermines the system's quality of service and sustainability.

There is currently significant pressure on the Ontario Government to increase funding to the Legal Aid system to ensure that the quality of service remains high and the program as a whole is sustainable. At the same time, Legal Aid Ontario has embarked on a restructuring program, which aims to shrink the number of community legal clinics in Ontario.

❑

References

1. Jon Robins, Guardian.co.uk, Thursday 12 march, 2009, 11 GMT Article history.
2. Mathews and Outton : Legal Aid & Advice, London, Butterworths, 1971
3. Surabhi Singhi, IV Semester, National Law University, Jodhpur
4. Scott, C.H. : Legal Aid Past and Present, A Brief Bleak Picture, pp. 4-5
5. Dr. Mrs. Mamata Rao – Public Interest Litigation : Legal Aid and Lok Adalats, Eastern Book Company, Delhi